आधी दुनिया

वर्ष-27, अंक - 2, अप्रैल-जून 2021

महिला शिक्षण सामग्री

कोरोना की दूसरी लहर और महिला

लाशों का देश

पुलों पर
झाड़ियों के नीचे,
गंगा के तट पर
खाली जमीन पर
लाशें हैं।

गड़गड़ आवाज करने वाली विशेष ट्रेनों में,
डगमगते जहाजों में,
चक्रवात ताऊते तूफानों में,
लाशें हैं।

अस्पताल के बाहर चाय की थड़ी पर,
अस्पतालों के बाथरूम में,
बेड के नीचे, सीढ़ियों पर, जमीन पर,
लाशें हैं।

गांव के घाट पर,
अम्मा की खाट के तले,
तंबुओं के भीतर,
कच्ची कोठरिया में,
सूखे कुएँ,
ताल तलैया, नदी नालों में,
बरगद की छांव में,
लाशें हैं।

मछुआरों के जाल में,
दलदली सांपों के बिलों में,
रिश्तों के बियाबान में,
लाशें हैं।

कोर्ट, कचहरी की फाइलों में,
अख़बार टीवी चैनलों में,
सूखे रेगिस्तान में,
हवा, पानी, कब्रिस्तान में,
मन्दिरों के गेट पर,
गुरुद्वारे और अजान में,
व्हाट्सएप, फेसबुक, ट्विटर पर
सत्ता की कुर्सी नीचे,
सड़कों और आसमान में,
लाशें हैं।

फौजी कैंपो में, सेना और कमांडो में,
लाशें हैं।

खुली आंखों की पुतलियों के भीतर,
नींद में, सपनों में,
दैवी उपस्थिति में,
अपने घर के छोटे से,
रोशनदान से बाहर,
एक अदद लाशों का देश,
देख रही हूं!

- सरिता भारत

वर्ष-27, अंक -2, अप्रैल-जून 2021

आधी दुनिया

संपादक
रोज केरकेट्टा

संपादक मंडल
सालगे मार्डी
सुनील मिंज
श्रावणी
शशि बारला

कलापक्ष
इंडिजिनोग्राफिक्स

संपादन कार्यालय
संवाद
301/ए, उर्मिला इन्क्लेव
पीस रोड, लालपुर
रांची - 834001 (झारखंड)
फोन - 0651-2530356
E-mail : **sarjomsamvad@gmail.com**
Website : **www.samvad.net**

पत्रिका में प्रकाशित आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के हैं, उनसे संपादकीय सहमति अनिवार्य नहीं है।

रोज केरकेट्टा द्वारा संपादित एवं प्रकाशित तथा कैलाश पेपर कन्वर्सन, रांची द्वारा मुद्रित

सीमित प्रसार

03	कोरोना की दूसरी लहर झेलती महिलायें	**किरण**
06	कोविड एवं अदृश्य महिला कामगार	**पूरबी पाल**
09	अर्थव्यवस्था की टूटी कमर, आम लोग हुए...	**श्रावणी**
11	कोविड – महिलाएं एवं किशोरियां	**नसरीन जमाल**
13	कोरोना की दूसरी लहर और महिला, किशोरी...	**अख्तरी बेगम**
15	कोरोना लॉकडाउन : प्रवासी मज़दूरों के लिए...	**चिंकी सिन्हा**
17	कोरोना की दूसरी लहर और महिला	**शांति सवैयां**
20	कोरोना काल के मेरे अनुभव	**आलोका**
21	कोरोना की दूसरी लहर में सीख देती महिलाएं	**डॉ सुरिन्दर कौर नीलम**
22	कोरोना की दूसरी लहर की बोझ ढोती...	**सविता गुप्ता मौलिक**
23	कोरोना प्रोटोकॉल की पालन करती महिलाएं	**फातिमा**
24	कोरोना की दूसरी लहर से सबक	**सुनील मिंज**
26	कोरोना काल में भारतीय महिलाओं को हो रही है...	**दयानिधि**
27	लॉकडाउन के दौरान बढ़े घरेलू हिंसा के मामले	**आधी दुनिया डेस्क**
28	बच्चों के लिए कोरोना वायरस का 'राक्षस'! क्या यह...	**हेमंत**
31	शोभा भाभी आप हमेशा यादों में जिंदा रहेंगी	**श्रावणी**
32	एक जीवन्त और जुझारू महिला : कनक	**किरण**
35	बेलो उर्फ शुकुरमोनी सरदार	**सिद्धेश्वर**
36	मुझे 'बोहु' बोलने वाली खामोश हो गई	**सालगे मार्डी**
37	बेलो भी चली गयी	**विनोद कुमार**
38	नहीं रहीं सामाजिक कार्यकर्त्ता और कवयित्री रेणु प्रकाश	**सुनील सिंह**
37	बहुगुणी सुंदरलाल बहुगुणा	**घनश्याम**

कोरोना की दूसरी लहर से लड़ती महिलाएं

कोरोना की दूसरी लहर ने पूरे देश को हिलाकर रख दिया है। लाखों लोग इसके शिकार हुए। श्मशान से लेकर कब्रगाह तक पैर रखने की जगह नहीं थी। परिणामतः हजारों लाशें गंगा और अन्य नदियों में बहा दी गईं।

यह लहर 'आक्सीजन की कमी' से उपजी मौत के रूप में सामने आई। कोरोना महामारी की दोनों लहरों ने जहां एक ओर सरकारी स्वास्थ्य व्यवस्था को बेनकाब कर दिया, वहीं दूसरी ओर महिलाओं पर मरीजों की देखभाल से लेकर परिवार को स्वस्थ्य रखने का अतिरिक्त बोझ लाद दिया। अनुभव बतलाता है कि घरों में देखरेख और मरीजों की सेवा में महिलाएं अगर आगे नहीं आई होंती, तो पता नहीं और कितने लोग काल के गाल में समा गये होते। महिलाओं की सूझबूझ और धैर्य का ही परिणाम था कि लाखों पीड़ितों को कोरोना महामारी से बचाया जा सका। कोरोना की दूसरी लहर में महिला डाक्टरों और नर्सों ने अपनी जान हथेली पर रखकर जिस प्रकार कोरोना पीड़ितों की सेवा की, वे काबिले तारीफ हैं। इस दौरान सैकड़ों महिला चिकित्सकों को अपनी जान तक गंवानी पड़ी।

'संवाद' के लिए अफसोस की बात यह कि अपने वरिष्ठ ट्रस्टी और झारखंड की योग्य शिक्षिका श्रीमती शोभा टुडू को भी इस महामारी ने हमसबों से छीन लिया। संघर्ष के साथी कनक और शोभा जी की मौत से अपूरणीय क्षति हुई है। 'संवाद' परिवार की ओर से उन्हें विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। उनके सार्वजनिक योगदान के लिए हूल जोहार करते हैं।

कोरोना की दूसरी लहर ने हमें यह सीख दी है कि हमें भविष्य में न सिर्फ सचेत रहना है बल्कि तीसरी लहर से बचाव के लिए ठोस रूप से पूर्व तैयारी भी करनी है। कहा यह जा रहा है कि तीसरी लहर बच्चों के लिए मारक साबित हो सकती है। ऐसी स्थिति में बच्चों और किशोरों की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने की खास जरूरत है। लेकिन हमें विशेष ध्यान बच्चियों पर किशोरियों पर देना है। ऐसा जानबूझकर कहना पड़ रहा है क्योंकि हमारा समाज अभी भी बच्चियों और किशोरियों के प्रति उतना संवेनदनशील और सजग नहीं है जितना बच्चों और किशोरों के प्रति। लैंगिक असमानता को पाटते हुए हमें तीसरी लहर से बचने की तैयारी करनी है। अगर हमसब यह कर पाए, तो तीसरी लहर को परास्त किया जा सकता है। बच्चे भारत के भविष्य हैं, तो बच्चियां भविष्य के सृजनहार।

कोरोना की दूसरी लहर झेलती महिलायें

किरण

कोरोना की दूसरी लहर ने शायद ही किसी को छोड़ा है। इसने समाज और देश की आर्थिक-सामाजिक स्थिति को बहुत बड़ा झटका दिया है, झकझोर कर रख दिया है। शायद ही कोई ऐसा परिवार होगा जिसने किसी अपने को, अपने किसी प्रिय को नहीं खोया हो। सैंकड़ों बच्चे अनाथ हो गए। किसी ने पति को खोया तो किसी ने पत्नी, बेटा, बेटी, बहू, दामाद को। शवों के अंतिम संस्कार को भी कोरोना काल में बहुत ही अमानवीय बना दिया गया। स्थिति इतनी भयावह हो गई है कि कहीं कहीं तो मृत्यु के उपरांत कोई पास आने वाला नहीं है, सब अपने घरों में दुबक से गए है, कोई रोने वाला नहीं है, मृतक को कोई कंधा देने वाला भी नहीं है। श्मशान और कब्रिस्तान में जगह कम पड़ रहे हैं। हजारों शवों को गंगा और दूसरी नदियों में बहा दिया गया या रेत में दबा दिया गया। कोरोना की पहली लहर के समय भी देश बेहाल हुआ था। कुछ लोगों ने उस समय ही इसके दूसरी लहर के प्रति चिंता जताई थी, लेकिन सरकार ने कुछ नहीं किया। इस विश्वव्यापी महामारी से लड़ने में आज सरकार की विफलता पूरी तरह से स्थापित हो चुकी है। अस्पताल में ऑक्सीज़न की कमी, बाज़ार में लोग दवा के लिए परेशान, जरूरी दवाओं की कालाबाजारी एक एक बेड के लिए तड़पते मरीज, तो कहीं बिलखते उनके परिजन। लगातार बिछुड़ते अपने। बड़ी ही दर्दनाक स्थिति थी, जिसका सामना करने के लिये हम सभी मजबूर थे। पूरा तंत्र ही संवेदनहीन सा हो गया था। कहीं किसी की लाश पड़ी है और कहीं लोग ऑक्सीज़न के लिये बिलख रहे हैं। रिश्ते नाते क्षत-विक्षत हो रहे है।

जब हम इस महामारी की चर्चा करते हैं तो हमें इस बात को ध्यान में रखना होगा कि इस रोग से पीड़ित होने वाले और इससे प्रभावित होने वाले लोगों में बड़ा अंतर है। इस विश्वव्यापी महामारी का प्रभाव शहरी और

ग्रामीण आबादी में अलग तरीके से देखने को मिलता है। इस दूसरी लहर में ग्रामीण भारत की स्थिति ज्यादा भयावह हो गई है। ज्यादातर सरकारी सुविधायें मजदूर–किसान के पास पहुँचते पहुँचते खत्म हो जाती है। बेरोजगारी की मार से सारा ढांचा हिल गया है। सारी राष्ट्रीय संपदा जो कि नागरिकों की ही कमाई हुई है, पर उसे नागरिकों पर खर्च करने में कोताही बरती जाती है। लॉकडाउन की स्थिति में जो लोग दिहाड़ी श्रमिक थे, उनको भूखमरी का शिकार भी होना पड़ा। कोरोना के कारण स्कूल कॉलेज सभी बंद हो गए हैं। यह भी तय सा लगता है कि एक बार स्कूल छूटने के बाद बड़ी संख्या में ऐसे बच्चे होंगे जो दुबारा स्कूल नहीं जा पाएंगे।

इस बात की चर्चा यहां जरूरी लगती है कि कोरोना से बचाव के लिए उपाय के रूप में, बार बार हाथ धोने, दो गज की दूरी बनाये रखने, मास्क पहनने की सलाह दी जा रही है। सोचने वाली बात यह है कि हमारे देश में पानी की समस्या एक विकराल समस्या है। पानी की सुविधा से कई राज्य वंचित हैं। ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं को मीलों सर पर घड़ा लेकर पानी की तलाश में जाना पड़ता है।

वैसी स्थिति में बार बार हाथ धोना वहाँ के लोगों के लिये एक विलासिता से ज्यादा कुछ नहीं है, जो कि वो करने में समर्थ नहीं हैं।

यह सुनने में थोड़ा अजीब लगेगा लेकिन इस विश्वव्यापी महामारी के प्रकोप को महिलाएं ज्यादा झेल रही हैं। उनके जीवन पर इसका प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों तरह का असर पड़ा है। वैसे तो इस संदर्भ में लिंगाधारित डाटा स्पष्टता से या यों कहें कि विश्वसनीय रूप में मौजूद नहीं हैं, लेकिन डाटा के झुकाव ये इंगित करते हैं कि इसका नकारात्मक असर लंबे समय तक महिलाओं पर पड़ने वाला है।

आज महिलाएं लगभग सभी क्षेत्रों में अपना योगदान दे रही हैं, लेकिन आमतौर पर देखा जाए तो आर्थिक चक्र चलाने में मदद करने वाले उद्योगों में, जैसे मैनुफक्चरिंग, कंस्ट्रक्सन आदि में पुरुष बड़ी संख्या में लगे हुए हैं, वहीं महिलायें ज्यादातर ऐसे व्यवसाय से जुड़ी हुई हैं जो आर्थिक चक्र सही तरीके से चलने पर ही काम करते हैं, जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएँ, रेस्टोरेन्ट, बार, पर्यटन उद्योग आदि। लॉकडाउन के कारण फिलहाल ये सभी व्यवसाय बंद हैं, लेकिन लॉकडाउन खुलने पर भी इन उद्योगों में से कितनी सेवाएं बहाल हो पाऐगीं, कहना मुश्किल है। जरूरी नहीं कि यहां कार्यरत बड़ी संख्या में महिलाओं को फिर से काम मिल ही जाए, या ये क्षेत्र जल्द ही गुलजार हो जाए। वैसे में बेरोजगारी की मार उन पर पड़ रही है और आगे भी पड़ने वाली है। सरकारी आंकड़े यह बताते हैं कि विकासशील देशों में आमतौर पर वहाँ की ज्यादातर महिलायें अनौपचारिक क्षेत्र के रोजगार में होती हैं। देश में लॉकडाउन होने का परिणाम यह हुआ की रातों-रात उनकी नौकरियाँ चली गईं। इस असुरक्षा के कारण महिलाएं मानसिक पीड़ा झेलने को बाध्य हुईं।

जो भी डाटा उपलब्ध है वो इस तथ्य को दर्शाते हैं कि इस बीमारी से मरने वालों में महिलाओं की तुलना में, पुरुषों की संख्या ज्यादा है। यह सत्य होते हुए भी इसके विश्लेषण में जाने की जरूरत है। जीव विज्ञान और स्वास्थ्य के सामाजिक समीकरण के मिश्रण को इस समस्या में देखा जा सकता है। जैसे आमतौर पर स्त्रियों की उम्र पुरुषों से ज्यादा होती है, अर्थात उनकी आयु लंबी होती है। हो सकता है, इस कारण भी कोरोना से पुरुषों की मृत्यु ज्यादा हुई हो। एक कारण उनके मोटापे, मधुमेह, उच्च रक्तचाप या श्वास की बीमारी भी हो सकती है। पुरुषों में श्वास संबंधी रोगों के कारण और प्रतिरोधक क्षमता कम होने के कारण भी उनकी मृत्यु ज्यादा हुई होगी। जो लोग गुटखा, तंबाकू, सिगरेट आदि का ज्यादा सेवन करते है, उनमें रोग प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है और साथ ही कोई भी बीमारी पनपने की संभावना बढ़ जाती है। पुरुषों की तुलना में महिलाओं में रोग के प्रकोप को झेलने की क्षमता मजबूत होती है, तभी तो इतना अस्वस्थकर वातावरण में रह कर, अपौष्टिक भोजन कर भी वो दीर्घायु होती हैं। इस तरह ये जीव विज्ञान का विषय न होकर जेंडर का मुद्दा बन जाता है। इससे एक समस्या और उभरती है कि पुरुष की मृत्यु होने से उसका परिवार आर्थिक रूप से भी टूट जाता है, जिसका असर घर के बच्चों और महिलाओं पर नकारात्मक रूप से पड़ता ही है।

लॉकडाउन की वजह से लगभग सभी तरह की आर्थिक गतिविधियां प्रभावित हुई हैं। मानो इस पर कोई ब्रेक सा लग गया है। बड़े पैमाने पर लोगों के रोजगार छिन गए हैं और आज भी ये क्रम चल ही रहा है। मंदी का दौर अलग से है। इसका सबसे ज्यादा असर महिलाओं पर पड़ा है। महिलाओं

की नौकरियां बड़ी संख्या में गई हैं। विश्व स्तर पर यह देखा गया है कि महिलाएं कम कमाती हैं, कम बचाती हैं, उनकी नौकरी की सुरक्षा भी कम होती है। इस कोरोना काल में महिला बेरोजगारों की संख्या बहुत बढ़ गई है।

हमारे समाज की संरचना में महिलाएं दोहरे स्तर पर कार्यशील रहती हैं। इस कोरोना काल में भी वो अपनी भूमिका बखूबी निभा रही थी। एक फर्स्ट लाइन कार्यकर्ता के रूप में तो दूसरी तरफ होम फ्रंट पर भी उतनी ही दक्षता से। उनके काम के लिए बाहर जाने से भी उनका घर उनसे नहीं छूटता है। इतना ही नहीं स्वास्थ्य, सुरक्षा, सामाजिक सहायता हर क्षेत्र में वो दोयम ही मानी जाती हैं। इस समय जब संसाधन की पूरी तरह कमी हो गई है, संस्थागत स्तर पर भी संसाधन सीमित हो गये हैं, इससे उत्पन्न होने वाले अवसाद से महिलाओं को ज्यादा जूझना पड़ रहा है। महिलाओं को आमतौर पर दुर्बल, कमजोर, सुकुमार कहा जाता है। इस विषम परिस्थिति में महिलाओं ने यौनिक और शारीरिक प्रताड़ना की दो तरफा मार झेला है।

इस महामारी की परिस्थिति में महिलाओं के हक की लड़ाई कहीं पीछे छूट गई है। गैरबराबरी की बात कौन करे, जब जीवन ही खतरे में हो। विश्व स्वास्थ्य संगठन के रिपोर्ट बताते हैं कि इस महामारी से ठीक होने के बाद भी कई तरह के नकारात्मक परिणाम सामने आ रहे हैं जो पहले से ही वर्तमान पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था में महिलाओं को संताप झेलने को मजबूर कर रहे हैं।

यह ठीक है कि कोरोना वायरस ने धर्म, जाति, वर्ग, लिंग में कोई भेद नहीं किया है बल्कि इसने तो पूरी मानवता को ही बर्बाद किया है। एक तरह से यह भी कह सकते हैं कि इसने महिला पुरुष दोनों को प्रभावित किया है, उसमें कोई विभेद नहीं किया है, लेकिन जब हमारे समाज में पहले से ही अथाह गैरबराबरी विद्यमान है, वैसी स्थिति में महिलाओं के ऊपर पड़ने वाले विभिन्न तरह के दवाबों के बारे में सहज ही सोचा जा सकता है।

एक तरफ तो कोरोना हमें हमारे घरों में घुस कर मार ही रहा है, दूसरी तरफ राजनीतिक दांव-पेच भी हो रहे हैं। एक आपातकाल सी स्थिति बन गई है। सभी कुछ बंद। कोरोना की दूसरी लहर ने भय का एक ऐसा माहौल बना दिया है, जिससे उबरने में अभी समय लगेगा। कई स्तर पर होने वाले सर्वे यह बताते हैं कि ज्यादातर समस्याएँ परिवार और महिलाओं से जुड़ी हुई हैं, जैसे अगर परिवार में पति की मृत्यु हो जाए, या बच्चों का स्कूल छूट जाए, घरों में पैसों की तंगी हो, बेरोजगारी हो (वो स्त्री की हो या पुरुष की), उसकी मार औरतों को ही झेलनी पड़ती है। वैसी स्थिति में यह मानना ही पड़ेगा कि कोरोना ने महिलाओं को अलग-अलग तरीके से और विशेष तौर पर भी प्रभावित किया है।

कुछ विशेषज्ञ आशंका व्यक्त कर रहे हैं कि कोरोना की तीसरी लहर आने ही वाली है। आएगी तो हम उसका मुकाबला कैसे करेंगे, इसकी कोशिश आज से ही होनी चाहिये। स्वास्थ्य सुविधाओं का एक मजबूत ढांचा खड़ा करना होगा। अगर कहीं तीसरी लहर आ गयी तो, उसके लिये अभी से ही सावधानी और सतर्कता जरूरी है। यह इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि यह केवल हमारे या हमारे घर के लोगों की जिंदगी का मामला नहीं है, वरन समाज और देश की बात है। इससे बचने के उपाय सोचने ही होंगे। कोरोना की विकरालता को कम करने के लिये युद्ध स्तर पर वैक्सीन लगवाना और अपनी स्वास्थ्य सुविधा को मजबूत करना आज बहुत जरूरी है। ■

कोविड एवं अदृश्य महिला कामगार

पूरबी पाल

कोविड महामारी महिलाओं को न केवल आजीविका और कौशल से वंचित किया है बल्कि महिलाओं के श्रम को भी अदृश्य बना दिया है। महिलाओं के सम्मान और उनके योगदान की भी अनदेखी की गई है। प्रवासी श्रमिक जो दूसरे राज्य में काम के लिए गये थे सरकार द्वारा लगाये गये लॉकडाउन के कारण उन्हें अपने गांव, शहर में वापस लौटना पड़ा। निश्चय ही यह उनके लिए बहुत ही मुश्किल एवं चुनौतियों भरा समय रहा। पर इस लॉकडाउन के कारण हुए रिवर्स माइग्रेशन में महिलाओं का चेहरा धूमिल रहा या यों कहें कि उसे अदृश्य बना दिया गया। मीडिया द्वारा प्रवासियों की जो तस्वीर जारी की गई, चाहे वह बांद्रा स्टेशन या दिल्ली का हो या रांची स्टेशन में उतरनेवाले यात्रियों का इन तस्वीरों के फ्रेम में महिलायें नहीं दिखी जो हमें सोचने पर मजबूर करती है कि क्या महिलायें प्रवासी नहीं है जो रोजगार के लिए पलायन करते हैं। महिलाओं का एक समूह ऐसा भी है जो परिवार के सदस्यों के साथ सहायक के रुप में जैसे रसोइया, सफाईकर्मी, ईंट भट्ठा या निर्माण स्थलों पर कार्य करती हैं। ये सबसे निचले पायदान के कामगार माने जाते हैं। इनका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता है। अभी के पलायन वाले यात्रा में वह अपने पति और बच्चों के साथ ही कैमरे में कैद की गई हैं। उनके चेहरे को स्वतंत्र चेहरे की छवि नहीं मिल पाई जो कि कहीं न कहीं महिला के अस्तित्व को ही नकारने जैसी बात है।

झारखंड की लाखों लड़कियां एवं महिलायें दिल्ली, मुंबई, चेन्नई जैसे बड़े शहरों में घरेलू कामगार के रुप में काम करने जाती हैं। महानगरों में वैसे न्यूक्लियर परिवार जहां पति-पत्नी दोनों काम में जाते हैं वहां बच्चों और बुजुर्गों की देखभाल जैसे काम जो आमतौर पर महिलाओं के काम के रुप में जाना जाता है वहां इन आर्थिक रुप से गरीब वर्ग की महिलाओं को काम पर रखा जाता है। ये

महिलायें घर के कामों के साथ-साथ देखभाल के काम की जिम्मेदारी भी अपने ऊपर ले लेती हैं जिससे मध्यमवर्गीय परिवार के महिलाओं के लिए कैरियर बनाना संभव हो पाता है। दैनिक जीवन की सर्वव्यापी हिस्सा होते हुए भी यह घरेलू कामगार प्रवासी महिलायें मीडिया की नजर से पूरी तरह अदृश्य हैं। सैलून, ब्यूटी पार्लर, होटलों, रेस्तरां या दुकानों में सहायक के रुप में काम करने वाली महिलायें जिन्हें पुरुषों से कम वेतन मिलती है सेवा अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के बावजूद भी इन्हें वह स्थान नहीं मिल पाता जिसकी वे हकदार हैं। शहरें जहां प्रतीक के रुप में ही उन्हें कुछ अवसर मिले हैं जहां अपनी इच्छानुसार बाहर निकलकर अपनी संभावना वह तलाशती हैं या घर के कामों को करने में भागते हुए महिलाओं को क्यों नहीं कोई कैमरा कैद करता है! इसका एक संभावित कारण यह भी हो सकता है कि सार्वजनिक डोमेन जिसे डिजाइन और नेविगेट इस तरह किया गया है कि जो काफी हद तक पुरुष डोमेन या है इसमें पुरुषों का वर्चस्व है या यह भी संभावना बहुत हद तक सही है कि परिवारों द्वारा महिलाओं को वापस लौटने की कोशिश में हतोत्साहित किया जाता है। इस महामारी ने प्रवासी मजदूरों

के सामने अभूतपूर्व स्थिति पैदा कर दी है। पुरुष कामगारों पर तो चर्चा हो रही है परंतु महिला प्रवासी कामगार पर चर्चा हो ही नहीं रही है या बहुत कम हो रही है। यह मुद्दा पूरी तरह से पुरुष कामगार पर केन्द्रित हो गया है। लॉकडाउन ने प्रवासियों के साथ बहुत ही विकट स्थिति पैदा की। कमाई समाप्त और घर तक पहुंचने के लिए कोविड संक्रमण के खतरे के साथ परिवहन के साधन के बिना ही अनिश्चितता के माहौल में ही लंबी दूरी का रास्ता तय करना पड़ा। महिलाओं के लिये तो यह काल और भी त्रासदी भरा रहा। क्वारंटाइन सेंटर में उचित व्यवस्था का अभाव और यात्रा के दौरान महिला, किशोरी और बच्चों के साथ छेड़छाड़ होने के बावजूद भी फिर काफी संख्या में प्रवासी कामगार महिला पुरुष दोनों ही 2020 में लॉकडाउन खुलने के बाद फिर काम पर चले गये और फिर इस लॉकडाउन में वापस लौट रहे हैं।

कोविड के नये नये वेरियंट सामान्य रुप से सभी के लिए परंतु विशेषकर महिलाओं के लिए जटिल स्थिति पैदा कर रही है। एक तरफ आय के अवसर कम हो रहे हैं, रोजगार घट रहे हैं तो दूसरी तरफ बीमारी का डर, स्वास्थ्य की बढ़ती लागत, महंगाई और घरेलू हिंसा जैसे मुद्दे बढ़ रहे हैं। अधिकांश लोग बेरोजगार हैं। सरकार मनरेगा के माध्यम से रोजगार उपलब्ध कराने की कोशिश कर रही हैं पर लोगों की संख्या के मुकाबले काम कम है और सभी इस तरह के काम के लिए इच्छुक भी नहीं हैं और सक्षम भी नहीं हैं।

इस बीमारी ने मानसिक स्वास्थ्य पर भी गहरा असर डाला है जिसका सबसे खराब प्रभाव महिलाओं पर पड़ा है। 'अमर उजाला' ने एक सर्वेक्षण किया है जिसमें यह पता चला है कि 93% महिलायें इतने तनाव में हैं कि वह अपने मन की बात भी नहीं कह पाती हैं। वहीं 85% से अधिक महिलाओं ने काउंसलिंग ही नहीं ली। कोरोना की पहली लहर की तुलना में दूसरी लहर ने महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य पर 200 फीसदी अधिक असर डाला है।

कोरोना की दूसरी लहर में महिलायें और बच्चे संक्रमित हुये हैं। गर्भवती और प्रसव के बाद भी महिलाओं

"यूएन वुमन के साल 2020 में जारी डाटा के अनुसार कोरोना वायरस महामारी के कारण लैंगिक असमानता की बढ़ोत्तरी के मामले में हम 25 साल पहले की जगह पर फिर आ खड़े हुये हैं।"

की मौत हुई है। इसका खुलासा इंडियन कांउसिल फॉर मेडिकल रिसर्च की स्टडी में हुआ है। यूएन वुमन के साल 2020 में जारी डाटा के अनुसार कोरोना वायरस महामारी के कारण लैंगिक असमानता की बढ़ोत्तरी के मामले में हम 25 साल पहले की जगह पर फिर आ खड़े हुये हैं। महिलाओं पर सेवा एवं देखभाल के कार्य का जो भार बढ़ा है उससे साल 1950 के समय का लैंगिक असमानता कायम होने का खतरा पैदा हो गया है। नौकरी पेशा महिलाओं के लिए यह चुनौती और भी कठिन है क्योंकि उन्हें नौकरी के साथ-साथ पति, बच्चे और बाकी परिजनों को संभालना भी पड़ता है।

शहरी अर्थव्यवस्था में रोजगार की प्रकृति और सुरक्षा की कमी प्रवासी महिला श्रमिकों की अदृश्यता को और अधिक संवेदनशील बनाती है। महिलाओं का एक बड़ा हिस्सा घरेलू और निर्माण कार्य जैसे अनौपचारिक रोजगार में काम पाता है। यहां कोई लिखित अनुबंध नहीं है जिसके कारण इन्हें शोषण एवं लिंग आधारित हिंसा का सामना करना पड़ता है। महिला श्रमिकों को कुशल श्रमिक भी नहीं माना जाता है जिनके कारण उन्हें निम्नतम कौशल स्तरों वाले कार्यों में रखा जाता है और पुरुषों की तुलना में वेतन भी कम दिया जाता है। इतना ही नहीं काम पर रखने या काम के परिणाम में लिंग एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इन्हें बिचौलिये के माध्यम से रखा जाता है। इन्हें श्रमिक के रुप में पहचान ही नहीं मिलती है। नतीजतन महिला प्रवासी श्रमिक सबसे अनिश्चित वाले क्षेत्र में कार्य पाती है। महामारी के

समय यह क्षेत्र सबसे ज्यादा प्रभावित हुआ है। इसमें रिकवरी की रफ्तार भी सुस्त रही है। महिला प्रवासी श्रमिक जो शहरों में काम करती हैं ज्यादा असुरक्षित होती हैं। आवास, स्वच्छता, पेयजल और सार्वजनिक परिवहन जैसी बुनियादी सेवाओं तक उनकी पहुंच नहीं होती है। इन सेवाओं को पाने के लिए उन्हें लंबे समय तक पैदल ही चलना पड़ता है, जिसके फलस्वरुप ये काम में समय कम दे पाती हैं और भुगतान कम मिलता है। बुनियादी सेवाओं का प्रावधान न मिलने के कारण सुरक्षा और लिंग आधारित हिंसा के खतरों का सामना इन्हें करना पड़ता है।

2020 के लॉकडाउन के समय देशभर में प्रवासी कामगारों की संख्या में कहीं भी प्रवासी महिला कामगारों की संख्या उपलब्ध नहीं है। पश्चिमी सिंहभूम में प्रवासी महिला श्रमिकों के छोटे समूह के साथ किये सर्वेक्षण से पूरे राज्य के प्रवासी महिला श्रमिकों की स्थिति का आकलन तो नहीं हो सकता है परंतु प्रवासी महिला श्रमिकों की अदृश्यता पर कुछ रोशनी जरुर डाल सकते हैं।

अध्ययन से पता चला कि पिछले लॉकडाउन में गांव लौटे करीब 30% लोगों को गांव में काम नहीं मिला। मनरेगा में न तो उन्हें लगातार काम मिला न ही समय पर मजदूरी। जिसके कारण सर्वेक्षण में शामिल 78 प्रवासी महिला श्रमिकों में से 58 महिलायें फिर से काम करने के लिए पलायन कर गईं, बाद में बची अन्य 26 महिला श्रमिक भी काम करने बाहर चली गईं। कोरोना की दूसरी लहर में जारी लॉकडाउन के कारण काम बंद हो गया और 73 महिला श्रमिक फिर वापस आ गईं।

प्रवासी श्रमिकों की स्किल मैपिंग राज्य सरकार के निर्देशन में की गई पर रोजगार सृजित अभी तक उस ढंग से नहीं हो पाया है। जून 2020 में शुरु किया गया ''गरीब कल्याण रोजगार अभियान'' के तहत गांवों में टिकाऊ बुनियादी ढांचा का निर्माण और इंटरनेट जैसी आधुनिक सुविधा बहाल करना था। उन्हें घर के आसपास काम मिले इसलिए भी स्किल मैपिंग किया जाता है।

महामारी से जूझ रहे सरकार को इन प्रवासी श्रमिकों के लिए आजीविका के अवसरों को ढूंढ़ना होगा। गांव में टिकाऊ आजीविका के ढांचे का निर्माण, ग्राम शासन में सुधार और बेहतर कृषि नीति के माध्यम से यह कुछ हद तक पूरा हो सकता है।

तमाम नकारात्मक बातों के बीच सकारात्मक बात यह हुई है कि प्रवासियों के प्रति समुदाय शासन-प्रशासन और सरकार का नजरिया बदल रहा है। सामाजिक समरसता और आपसी एकता की झलक देखने को मिल रही है। लेकिन पितृसत्तात्मक व्यवस्था में महिला श्रमिकों को समान नागरिक की मान्यता दिलाकर उनकी स्थिति में बदलाव लाने के कार्य करने की आवश्यकता है। स्वैच्छिक संगठन, संस्थाओं को इन महिला श्रमिकों को संगठित करने के साथ-साथ इनके परिवारों को मजबूत बनाना होगा। कृषि वन और वनोपज पर अधिकार के साथ-साथ श्रम कानूनों में संशोधन श्रमिकों के हित में करना होगा। समुदाय के नेतृत्व में सरकार के सहयोग से आजीविका के श्रोतों की पहचान करनी होगी। रोजगार के अवसर और उन तक महिला श्रमिकों की पहुंच के लिए सामूहिक चिंतन और सटीक रणनीति की आवश्यकता पर बल देना होगा। सूचनाओं को साझा करना, आपसी ज्ञान निर्माण और प्रवासी श्रमिकों के लिए उचित नीति की वकालत के लिए राज्य सरकार के साथ रचनात्मक संवाद की पहल करने की भी जरुरत है। ■

अर्थव्यवस्था की टूटी कमर, आम लोग हुए बेरोजगार और महिलाएं बेहाल

श्रावणी

कोरोना महामारी की दूसरी लहर ने भारत को बुरी तरह से गिरफ्त में ले रखा है। आंकड़ों में यह बात सामने आई है कि इस बार महिलायें एवं युवा ज्यादा संक्रमित हो रहे हैं। पूरे देश की बात करें तो महिलायें 35.41% संक्रमित हुई हैं। स्वास्थ्य विशेषज्ञों का मानना है कि महिलाओं में संक्रमण दर बढ़ने का कारण वायरस के स्वभाव में अंतर होना हो सकता है। जबकि सामान्य तौर पर महिलायें पुरुषों से ज्यादा कोरोना प्रोटोकॉल का पालन करती हैं। महिलायें काम या अन्य सिलसिले में भी घर से बाहर कम ही निकलती हैं। तब इसके कारण क्या हो सकते हैं? कहीं न कहीं हमारी आर्थिक व्यवस्था एवं सामाजिक संरचना तो इसके लिए जिम्मेवार नहीं है। इस कोरोना वायरस महामारी ने अर्थव्यवस्था की कमर तोड़कर रख दी है। ताजा आंकड़े बताते हैं कि कोरोना की दूसरी लहर की वजह से भारत में एक करोड़ से ज्यादा लोग बेरोजगार हो गये हैं। कोरोना महामारी की शुरुआत से लेकर अब तक 97% परिवारों की आय घट गयी है। सेंटर फॉर इंडियन इकोनॉमी द्वारा करीब 1.75 लाख परिवारों के बीच सर्वे किया गया और जो आंकड़े जारी किये गये हैं, वे काफी डरावने हैं।

कोरोना की दूसरी लहर से बेरोजगारी 10 मिलियन है जिसमें शहरी बेरोजगारी दर 14.73%, ग्रामीण बेरोजगारी दर 10.63% और देशव्यापी बेरोजगारी दर 11.90% है। ये आंकड़े मई 2021 के हैं। सेंटर फॉर इंडियन इकोनॉमी के चीफ एग्ज्यूकिटिव महेश व्यास के अनुसार अप्रैल महीने में यह बेरोजगारी दर 8% थी, जो मई महीने में करीब-करीब 12% हो गई। उनके अनुसार जिन लोगों की

नौकरी गई है उन्हें दोबारा नौकरी मिलने में काफी मुश्किलें हो रही हैं। असंगठित क्षेत्र में कुछ हद तक कार्य सृजित हो भी रहे हैं पर संगठित क्षेत्र और अच्छी क्वालिटी की नौकरी है उसमें वापसी में समय लग सकता है। कोरोना काल में मुद्दों की प्राथमिकतायें बदल गई है। विगत दो वर्षों में महिलाओं के ऊपर अवैतनिक कार्यों का बोझ ज्यादा बढ़ गया है। मंदी में उनके भी रोजगार छिन गये हैं। परिवार की आय घट गई है। परिवार में व्याप्त आर्थिक तंगी की क्षतिपूर्ति महिलाओं एवं किशोरियों को अतिरिक्त काम करके पूरी करनी पड़ रही है और ये कार्य आय वाले कार्यों की श्रेणी में भी नहीं रखे जाते हैं। एक तरफ आय घट रही है तो दूसरी तरफ महंगाई बढ़ रही है। घटते रोजगार के साथ-साथ कोरोना की दूसरी लहर में महंगाई भी विकराल रुप लेती जा रही है। थोक महंगाई दर 12.94% के रिकार्ड

> "कोरोना की दूसरी लहर में महंगाई भी विकराल रुप लेती जा रही है। थोक महंगाई दर 12.94% के रिकार्ड स्तर पर तो खुदरा मुद्रास्फीति 2% बढ़ गयी है। महंगाई के इन आंकड़ों का आम उपभोक्ता पर सीधा असर पड़ रहा है और महिलाओं पर तो इसका असर ज्यादा है।"

स्तर पर तो खुदरा मुद्रास्फीति 2% बढ़ गयी है। महंगाई के इन आंकड़ों का आम उपभोक्ता पर सीधा असर पड़ रहा है और महिलाओं पर तो इसका असर ज्यादा है। घर की तमाम जरुरतों को पूरा उन्हें ही करना पड़ता है। इस वृद्धि के पीछे पेट्रोल-डीजल के दामों में बेतहाशा वृद्धि को माना जा रहा है। वजह चाहे जो भी हो बढ़ती महंगाई ने लोगों की कमर तोड़कर रख दी है। खाद्य तेलों में 30.4%, फल 11.96%, दालें 9.39%, पेय पदार्थ 15.10%, कपड़े व फुटवेयर 5.32% और ट्रांसपोटेशन में 12.38% का उछाल आया है। ऐसा लगता है जैसे बाजार पर से सरकार का नियंत्रण खत्म हो गया है। बाजार पर बिक रही वस्तुयें और ऑनलाइन बेचे जा रहे वस्तुओं के दर में अंतर दिखता है। ऑनलाइन वस्तुयें सस्ती मिल रही हैं। और जब सस्ती चीजें मिलेंगी तब लोग ऑफलाइन क्यों खरीदेंगे। लोगों के खरीददारी नहीं करने से खुदरा विक्रेता के समक्ष भुखमरी की नौबत आ गई है। सरकारों ने अगर महंगाई रोकने के कोई ठोस उपाय नहीं किये तो देश भयानक स्थिति में जा सकता है। एक तरफ महंगाई की मार तो दूसरी तरफ आय में कमी महिलाओं को घर चलाने में काफी दिक्कतें पैदा कर रहा है। शहरों के मुकाबले गांवों में महंगाई ज्यादा है। मैन्यूफैकचरिंग से जुड़े उत्पादों में भी 10.83% की बढ़ोत्तरी उद्योगों को प्रभावित करेगी और ये उद्योग भी मुनाफा कमाने के लिए लोगों को छंटनी करेगी।

घरेलू गैस का सिलेंडर जो 500 या 600 रुपये में एक वर्ष पहले मिलता था उसका दाम बढ़कर 1000 रुपया हो गया है। साफ सफाई एवं स्वच्छता वाली चीजें जैसे साबुन, लाइजोल, फिनायल, सेनिटाइजर इत्यादि अब अनिवार्य वस्तुओं की श्रेणी में आ गये हैं। इन सब की पूर्ति के लिए महिलायें कहीं न कहीं अपनी जरुरतों से समझौता कर रही हैं।

लॉकडाउन के कारण घर के पुरुष सदस्य ज्यादातर घर में रह रहे हैं जिससे भी महिलाओं को आराम करने के लिए जगह और समय नहीं मिल पा रहा है। परिवार के संक्रमित होने पर उनकी सेवा या देखभाल करते वह खुद भी संक्रमित हो रही हैं। परंतु अपने संक्रमण की परवाह किये बिना वह घर के अन्य सदस्यों की देखभाल में लगी रहती हैं। महंगाई के दौर में सबको खाना खिलाकर जो बचता है उसी से अपना गुजारा चलाती हैं। पौष्टिक भोजन तो उन्हें नहीं ही मिल पाता है। हमारी सामाजिक संरचना एवं पुरानी मानसिकता से अब तक लोग उबर नहीं पा रहे हैं। अभी भी महिला यदि बीमार पड़ती हैं तो देखभाल की बात तो दूर चिकित्सीय सुविधा भी उन्हें समय पर नहीं मिल पाती है। कामकाजी महिलायें जो घर से कार्यालय का काम कर रही हैं, घर के कार्य और कार्यालय के कार्य में संतुलन बनाने में उन्हें अच्छा खासा दिक्कत का सामना करना पड़ रहा है। अपने बीमार रहने पर भी घर के अन्य सदस्यों की तीमारदारी उन्हें करनी पड़ रही हैं। कार्य के दोहरे बोझ से तो वह दब ही रही हैं साथ ही साथ घरेलू हिंसा की शिकार भी हो रही हैं। कुल मिलाकर यदि देखा जाय तो कोरोना संक्रमण के कारण महिलायें चौतरफा मार झेल रही हैं। कार्य का अतिरिक्त बोझ, सीमित आय में घर चलाना, कार्यालय एवं घर के कार्यों में संतुलन एवं परिवार को संक्रमण मुक्त रखने की चिंता उन्हें मानसिक रुप से बीमार बना रही है। समय रहते यदि इसका हल नहीं निकाला जाता है तो स्थिति भयावह हो सकती है। इस संकट के समाधान के लिए सबों को सम्मिलित रुप से प्रयास करने की जरुरत है। ■

कोविड – महिलाएं एवं किशोरियां

नसरीन जमाल

मेरा नाम अनूपा रानी है, मैं अपने गाँव के सरकारी स्कूल में क्लास 8 में पढ़ाई कर रही हूँ। कोरोना के कारण स्कूल बंद है। पता नहीं मैं अब स्कूल जा पाऊँगी या नहीं। घर का पूरा काम मुझे ही करना पड़ता है। माँ पिताजी खेत चले जाते हैं। मैं सुबह 6 बजे से उठ कर काम में लग जाती हूँ। मेरा भाई राकेश मुझसे बड़ा है वह क्लास 9 में पढ़ाई करता है। लेकिन वह घर का कोई काम नहीं करता है, उसके पास मोबाइल भी है जिससे वह अपनी पढ़ाई करता है और हमेशा मोबाइल से चिपका रहता है। किसी को मेरी पढ़ाई की कोई चिंता नहीं है। अब घर में मेरी शादी की बात होने लगी है। माँ ने पिताजी को बताया की अनूपा बड़ी हो गयी है। मुझे समझ नहीं आया की माँ ने पिताजी को ऐसा क्यों कहा। अनूपा माँ से पूछी आपने पिताजी को कहा की मैं बड़ी हो गयी हूँ यह बात मुझे समझ नहीं आई। अनूपा की माँ ने अनूपा को बताया की पिछले महीने तुम्हारा मासिक धर्म (माहवारी) शुरू हो गयी है इसका मतलब है तुम बड़ी हो गयी हो। तुम्हें अब घर में ही रहना है। अनूपा का मन है पढ़ाई करे उसके बाद नौकरी करने के बाद ही शादी करना चाहती है। अनूपा ने अपने दिल की बात अपनी माँ को बताई। अनूपा की माँ का कहना है की कोरोना के कारण तुम्हारे पिताजी बाहर काम करने नहीं जा पा रहे हैं। खेत का काम करके सभी का भरण पोषण करना दिक्कत है। इसीलिए तुम्हारी शादी जल्दी करना चाहते हैं ताकि उनका बोझ कम हो जाये। ना जाने कितनी किशोरियां हैं जो लॉकडाउन के बाद स्कूल नहीं जा सकेंगी। यह हमारे लिए बहुत ही चिंता का विषय है। तालाबंदी की दौरान किशोरियां बड़ी हो रही हैं उसका सीधा संबंध उसकी पढ़ाई पर है क्योंकि स्कूल बंद है तो वह अब स्कूल नहीं जा सकेगी। उनके सपने, आकांक्षायें सब कोविड के कारण खो गये। हमारा समाज हमेशा से

लड़कियों को बोझ समझता रहा है। कोविड ने किशोरियों और महिलाओं में बहुत ही अलग-अलग तरीके से अपना प्रभाव छोड़ा है। काम का बोझ, जल्द शादी, पढ़ाई से वंचित हो जाना जिसके कारण मानसिक तनाव होना स्वाभाविक है। लड़कियों को अपनी शिक्षा जारी रखने के लिए कई मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। विद्यालय जाने के रास्ते में हिंसा और छेड़छाड़, माहवारी के कारण विद्यालय नहीं जा पाना इनमें शामिल हैं।

अनूपा कहती है मेरी सहेली अनुराधा को लॉकडाउन के दौरान सेनेटरी पैड नहीं मिलने के कारण बहुत परेशानियाँ हुई। लॉकडाउन में राशन, दवाएं, जरूरी सामान की किल्लत के अलावा सेनेटरी पेड की अनुपलब्धता भी एक बहुत बड़ी समस्या बनकर सामने आई है। बाजार दूर होने और परिवहन बंद होने की वजह से ये मेडिकल स्टोर तक भी नहीं पहुंच पा रही हैं यह समस्या अनुराधा की तरह हजारों-लाखों किशोरियों और महिलाओं की है। लॉकडाउन में उन्हें सेनेटरी पैड नहीं मिल पा रहे हैं। जिस वजह से वे काफी परेशान हैं। सेनेटरी पैड की कमी के कारण

गांव-देहात में लड़कियों ने एक बार फिर से कपड़े के बने पैड का इस्तेमाल करना शुरू कर दिया है। जिसके कारण इससे संक्रमण का खतरा भी बढ़ गया है। महामारी के प्रभाव के कारण महिलाएं पहले के मुक़ाबले घरेलू काम और परिवार की देखभाल ज्यादा कर रही हैं।

यूएन वुमन के नए वैश्विक डेटा के मुताबिक कोरोना वायरस महामारी के कारण हम लैंगिक समानता में हुई बढ़ोतरी के मामले में 25 साल पुराने स्तर तक पिछड़ सकते हैं।

यूएन वुमन की डिप्टी एक्ज्यूक्यिूटिव अनीता भाटिया कहती हैं - ''हमने पिछले 25 वर्षों में जो भी काम किया है, वो एक साल में खो सकता है।''

रोजगार और शिक्षा के मौके खत्म हो सकते हैं। महिलाएं ख़राब मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य की शिकार हो सकती हैं।

एक कामकाजी महिला शेफाली कहती हैं - 'मैं रोज़ बहुत थक जाती हूं'।

उसने अपनी डायरी में लिखा, ''सुबह के पाँच बज चुके हैं। मैं जग गयी हूँ क्योंकि मुझे घर, बच्चे और ऑफिस का काम भी करना है। लॉकडाउन के दौरान शेफाली और रंजन (शेफाली के पति) दोनों घर से काम कर रहे हैं लेकिन उनका दिन बहुत अलग-अलग तरीक़े से बीतता है।''

रंजन सुबह 9:30 बजे से शाम के क़रीब पाँच या 6:30 बजे तक काम करते हैं। शेफाली का कहना है कि ''रंजन के पास कमरे के अंदर रहकर काम पर ध्यान देने की सुविधा है लेकिन मेरे पास ये सुविधा नहीं हैं। मुझे यह सही नहीं लगता है।'' शेफाली कहती हैं कि ''मैं घर पर 80 प्रतिशत अवैतिनक काम करती हूँ जिसमें उनकी चार साल की बेटी और 13 का एक बेटा भी है। जिसकी पूरी जिम्मेदारी मेरी है। ये काम का बोझ पुरुषों पर नहीं है महिलाओं पर है।''

महिलाओं की दोहरी जिंदगी पर कोविड का बहुत ज्यादा प्रभाव पड़ा है। पारंपरिक तौर पर ये माना जाता है कि पुरुष कमाने वाले होते हैं जबकि महिलाएँ घर संभालती हैं। इसीलिए लड़कियों से घर का काम सीखने की उम्मीद की जाती है। घर के लोग ''जब बच्चों से मदद लेने की बात आती है (अवैतनिक काम में), तो माता-पिता बेटे की बजाय बेटी की मदद लेना पसंद करते हैं।'' हमें इस सोच को बदलने की जरूरत है। जेंडर एक सामाजिक संरचना है। जिसके तहत सामाजिक नियमों के साथ अलग-अलग जेंडर के लिए अलग-अलग नियम बनाए जाते हैं और भूमिकाएँ भी निर्धारित हो जाती हैं। इसे इस प्रकार समझा जा सकता है कि भारत एक प्रगतिशील देश है पर यहाँ आज भी महिलाओं का बाहर जाकर कामकाज करना मुश्किल है और कामकाजी महिलाओं का प्रतिशत 1999-2000 में जहाँ 34.1% था 2011-12 में यह घट कर 27.2% हो गया। वहीं पुरुषों की बाहरी कामकाज में सहभागिता 76% है। समय के साथ कई चीज़ें बदल गई पर आज भी महिलाओं को बाहर काम करने के लिए किसी ना किसी पुरुष की इजाजत लेनी पड़ती है। उन्हे केवल वही काम करने दिए जाते हैं जो समाज ने उनके लिए बनाए हैं। बावजूद इसके जबकि 1951 में भारत में महिलाओं की शिक्षा दर 8.86% थी वह 2011 में बढ़कर 65.4% हो गई। अभी के समय में हमें अपने घरों से ही बदलाव की शुरुआत करनी होगी। घर का काम हो या बाहर का काम सभी लोग बराबरी से करें, तभी हम बदलाव की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं। ■

कोरोना की दूसरी लहर और महिला, किशोरी एवं बच्चे

अख्तरी बेगम

कोरोना ने पूरे विश्व में एक डर का माहौल बना दिया है इससे कोई भी अछूता नहीं है। पर इससे जो सबसे ज्यादा प्रभावित हुई है वो है - महिला, किशोरी एवं बच्चे। कोरोना के असर के बारे पता लगाने के लिए हमने महिलाओं से बातें की। अपने अनुभवों को उसके समक्ष रखा एवं उनके अनुभवों को भी सुना। उन्हीं अनुभवों को आपके समक्ष साझा करते हुए सभी पहलुओं को जानेंगे जो उन्होंने महसूस किया है एवं जिससे वे सबसे ज्यादा प्रभावित हुई हैं।

कोरोना और गर्भवती महिला - कोरोना काल में गर्भवती महिलाओं को काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ा है। सभी अस्पतालों में कोविड वार्ड बना दिया गया जिसकी वजह से जो महिलायें गर्भवती हैं उनके लिए अपने आपको और अपने बच्चे को सुरक्षित रखना एक चुनौती भरा काम था। 28.7% गर्भवती मातायें एवं प्रसव के उपरांत भी माताओं की मृत्यु हुई है जो पहले की कोरोना काल से अधिक है। कोरोना की पहली लहर में 14.2% गर्भवती एवं प्रसव उपरांत महिलाओं की मृत्यु हुई है। दूसरी लहर में बच्चें भी काफी संक्रमित हुए हैं एवं उनमें गंभीर लक्षण भी दिखे हैं। कुछ बच्चे तो अनाथ भी हो गये। कोविड ने उनके मां-पिता दोनों को छीन लिया।

कोरोना के दौरान महिलाओं पर हुये हिंसा को जानने के लिए हमने उनके साथ बातचीत की। चर्चा के उपरांत जो महत्वपूर्ण बातें निकलकर आयी वो इस प्रकार हैं -

क्र.	कोविड के दौरान वाक्य	म.	पु.	कथन
1.	कोविड के दौरान घर की जिम्मेदारी किसकी होती है?	✓		94% महिला और पुरुषों का मानना है कि घर की जिम्मेदारी महिला की है।
2.	नई-नई फरमाइशें कौन करता है?		✓	महिलाओं ने ये बताया कि पुरुषों का कहना है कि अब सारा दिन घर पर ही रहना है तो कुछ न कुछ तो खाते रहना है। इस तरह का मौका इससे पहले कहां मिला है?
3.	फोन का इस्तेमाल सबसे ज्यादा कौन करता है?		✓	फोन का इस्तेमाल घर के सारे पुरुष ही करते हैं, जब हमने लड़कियों और महिलाओं के साथ बात किया तो वहां से हमें पता चला कि घर में बाहर रहने वाले भी पुरुष वापस आ गए हैं और उनको ऐसा लगता है कि अगर लड़कियां फोन का इस्तेमाल करेगी तो बिगड़ जायेंगी तो जो पहले थोड़ा-बहुत इस्तेमाल करती भी थीं तो वो अब उनके पास नहीं हैं।
4.	रसोई में सबसे ज्यादा कौन समय बिताता है?	✓		लड़कियों और महिलाओं के साथ बात करने पर यह भी पता चला है कि वो अपना सारा समय किचन के कामों में बिता देती हैं। उनका कहना है कि पहले तो हम आराम भी कर लिया करते थे, पर अभी तो ये मुमकिन नहीं हो पाता है।

5.	बाल-विवाह में बढ़ोत्तरी	✓	✓	बाल-विवाह की बात करें तो गांव के स्तर पर पुरुष और महिला दोनों के साथ है। लेकिन अगर बढ़ोत्तरी की बातें करें तो लड़कियों के साथ ज्यादा हुआ है। लॉकडाउन की वजह से लोग छुप-छुपा कर लड़कियों की शादी कर दे रहे हैं।
6.	शिक्षा में रुकावट	✓	✓	कोरोना की वजह से शिक्षा का काफी नुकसान हुआ है। स्कूल बंद पड़े हैं। लड़कियों की शिक्षा पर इसका असर ज्यादा पड़ा है। क्योंकि घर पर रहने से उन्हें घरेलू काम भी करने होते हैं और ऑनलाइन क्लास के लिये फोन उन्हें मिलता नहीं है।

डाटा के इतर अगर हम बात करें तो महिलायें दिमागी तौर पर काफी परेशान हुई हैं। मैं ऐसा नहीं कह रही कि सिर्फ महिलायें ही हुई हैं और भी कई पुरुष भी इससे परेशान हैं, पर महिलायें और लड़कियां इससे काफी प्रभावित हुई हैं। जब बाहर रहने वाले पुरुष घर लौट आये तो रोजगार की दिक्कत होने लगी। अब पुरुषों का गुस्सा भी महिलाओं पर ही निकलने लगा। वो अपनी घर की औरतों से मार-पीट करने लगे।

इस दौरान अफवाह भी काफी जोर पर था कि शराब पीने से कोरोना नहीं होगा और पुरुषों के पास कोई काम भी तो नहीं था इसलिए वो शराब पीने लग गए जिससे घर की हालत और भी खराब होने लगी। इस वजह से भी औरतों और लड़कियों को काफी ज्यादा हिंसा का सामना करना पड़ा।

यौन हिंसा - महिलाओं के साथ घर में रहने वाले पुरुष सदस्य ने जबरदस्ती की, बिना उनके सहमति के यौन रिश्ते बनाये। यहां पर भी महिलाओं को हिंसा का सामना करना पड़ा। वो पूरा दिन काम में रहती थी, बिना आराम वो सारा काम निपटाती और फिर रात को उनके साथ जबरदस्ती ये सब इन दिनों बहुत ज्यादा हुआ।

कोरोना और आर्थिक स्थिति - कोरोना की दूसरी लहर में आर्थिक स्थिति और भी बद से बदत्तर हो गई है। पहली लहर में बाहर रहने वाले लोग वापस अपने गांव लौट आये थे। वो थोड़ा संभलते उससे पहले ही कोरोना की दूसरी लहर ने अपना पैर फैला दिया। लोग बेरोजगार हैं और इसमें ज्यादातर महिलायें हैं जिन्हें अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़ा है। एक सर्वे है जो ये बताता है कि दिसंबर 2019 में नियोजित प्रत्येक 100 महिलाओं में 74 ने तालाबंदी के दौरान काम खो दिया और बाद में 11 अन्य ने काम खो दिया। अब आप सोच सकते हैं, जिनकी नौकरियां नहीं थी और वो महिलायें नौकरियां तलाश ही कर रही थी और फिर से कोरोना की दूसरी लहर आकर इनका कमर तोड़ दिया। अब तो जिनकी नौकरियां भी बची थी उनके भी हाथ से ये नौकरियां निकल गई। सिर्फ 10% महिलाओं के पास नौकरियां है 90% महिलायें बेरोजगार हैं।

कोरोना और स्वास्थ्य - हम गांव की बात करें तो वैसे ही महिला और लड़कियों के स्वास्थ्य पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया जाता है और हम सब यह भी जानते हैं कि गांव में स्वास्थ्य सुविधा कैसी होती है। गांव स्तर पर ये काम नहीं करता है और जो प्रखंड स्तर पर है वो भी नाम मात्र का चलता है। इसमें सिर्फ गर्भवती महिलायें ही जाया करती हैं। महिलाओं और लड़कियों के लिए इसमें कोई सुविधा नहीं है।

कुल मिलाकर देखा जाय तो महिलाओं की स्थिति कोरोना की दूसरी लहर में और भी ज्यादा खराब हुई है। उनके ऊपर जिम्मेदारी का बोझ बढ़ा है और हिंसा भी बढ़ी है। इसके समाधान के लिए सम्मिलित प्रयास की जरूरत है नहीं तो स्थिति भयावह हो सकती है। ■

कोरोना लॉकडाउन : प्रवासी मज़दूरों के लिए ना घर में काम, ना बाहर, जाएं तो जाएं कहाँ?

चिंकी सिन्हा

जोगिंदर हमाली अहमदाबाद शहर में वर्षों तक खुले में अपने ठेलेगाड़ी पर सोते रहे। उन्हें जिंदगी की नाइंसाफ़ी पर हैरानी होती थी। पिछले साल लॉकडाउन से पहले तक वह अहमदाबाद में दिहाड़ी कर रहे थे। लेकिन काम छूट गया तो वो गाँव लौट गए।

कुछ महीनों पहले काम की तलाश में हमाली फिर अहमदाबाद लौटे, लेकिन इस साल अप्रैल में जब लॉकडाउन लगा तो एक बार फिर उन्हें मजबूर होकर गाँव का रास्ता पकड़ना पड़ा। उन्हें पता था कि बग़ैर काम और पैसे के शहर में टिके रहना मुश्किल होगा।

हमाली यूपी के रहने वाले हैं। गांव में उनके पास एक बीघा से भी कम ज़मीन है। पूरे परिवार में दस लोग हैं।

फोन पर बात करते हुए उन्होंने कहा, हमें मुश्किल से कभी राशन मिलता है। ग़रीबों को अक्सर इससे महरूम रखा जाता है। पिछली बार एक दफ़ा तीन लोगों के लिए 25 किलो राशन मिला था। लेकिन परिवार में और भी तो लोग हैं। हमने शिकायत भी की लेकिन कोई सुनवाई नहीं हुई।'

हमाली इस देश के उन लाखों प्रवासी मज़दूरों में शामिल हैं, जो कोरोना की पहली और दूसरी लहर में बेरोज़गार हो गए और ग़रीबी में धकेल दिए गए।

सरकार जितना अनुमान लगा रही है उससे काफ़ी ज्यादा लोग ग़रीबी के गर्त में धकेल दिए गए हैं।

मज़दूरों को भयंकर ग़रीबी के गर्त में धकेल रहा कोरोना

रोज़गार और लोगों की आय से जुड़ी जो रिपोर्टें आ रही हैं, उनसे पता चलता है कि कोरोना के बढ़ते मामले गरीबों की दुश्वारियों में और इज़ाफ़ा ही करेंगे।

रिपोर्टों के मुताबिक़, 23 करोड़ अतिरिक्त लोग राष्ट्रीय न्यूनतम मज़दूरी की आय के स्तर से नीचे जाकर ग़रीबी में फंस चुके हैं। इनमें यह कहा गया है कि बेहद ग़रीब परिवारों ने इस मुसीबत में काफ़ी कर्ज लिया है। यह कर्ज ऊंचे ब्याज पर साहूकारों से लिया गया है।

मनरेगा में काम करने वालों की संख्या में रिकॉर्ड इजाफा हुआ है। बिहार में ग्रामीण समुदायों के बीच काम करने वाले अबोध कुमार का कहना है कि प्रवासी मज़दूरों को ना के बराबर काम मिला है।

वह कहते हैं, भुखमरी तय है। गांवों में कोई काम नहीं है। मनरेगा यहां काम नहीं करता है। लोगों के पास जॉब कार्ड नहीं है। उन्हें मनरेगा पर भरोसा नहीं है। इसकी मज़दूरी समय पर मिलती ही नहीं है। यहां कोई स्कीम काम नहीं करती।'

सरकार ने मई और जून में फ्री राशन देने का ऐलान किया था लेकिन यह काफी नहीं है। 1 अप्रैल तक के आंकड़ों के मुताबिक 2020-21 में 11.17 करोड़ लोगों ने मनरेगा के तहत काम हासिल किया था जबकि 2019-20 में इसके तहत 7.88 करोड़ लोगों ने इसमें काम किया था।

लेकिन अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन यानी आईएलओ की स्टडी बताती है कि देश के अंदर ही एक जगह से दूसरी जगह जाकर (आंतरिक प्रवासी मज़दूर) काम करने वाले 95 फ़ीसदी मज़दूरों का काम लॉकडाउन के दौरान छिन गया। मनरेगा का लाभ सिर्फ सात फ़ीसदी लोगों को मिला है।

12 मई को पटना हाई कोर्ट ने बिहार सरकार से पिछले साल कोरोना की पहली लहर में गांव लौटे 40 लाख प्रवासी मजदूरों के बारे में स्टेटस रिपोर्ट मांगी।

मुफ्त राशन देने का क़दम भी कारगर नहीं

मार्च, 2020 में सरकार ने ऐलान किया था कि 80 करोड़ लोगों को नवंबर तक हर महीने अतिरिक्त पांच किलो गेहूं या चावल और एक किलो दाल फ्री मिलेगी।

जून 2020 में ही सरकार ने ग़रीब कल्याण रोजगार अभियान का ऐलान किया था। काम देने की यह स्कीम गांव लौट रहे प्रवासी मज़दूरों के लिए लागू की गई थी।

यह स्कीम, 50 हज़ार करोड़ रुपये के आवंटन से शुरू हुई थी। इसका मक़सद देश के छह राज्यों के 116 जिलों के ग्रामीण इलाकों में रोज़गार देना और इन्फ्रास्ट्रक्चर तैयार करना था।

बिहार के मुज़फ्फरपुर में प्रवासी कामगारों के स्वयंभू नेता संजय सहनी कहते हैं कि जिस पैमाने पर लोग बेरोज़गार हुए हैं, उसकी तुलना में यह काम बहुत कम है। सहनी खुद प्रवासी कामगार हैं और मनरेगा कार्यकर्ता भी। पिछले साल उन्होंने निर्दलीय उम्मीदवार के तौर पर बिहार विधानसभा का चुनाव भी लड़ा था।

इस साल जब बजट पेश किया गया था तो प्रवासी मज़दूरों को राहत देने के लिए कई उपायों का ऐलान हुआ था।

इनमें वन नेशन, वन राशन कार्ड जैसी स्कीम भी शामिल थी। यह एक पोर्टेबिलिटी स्कीम है, जिसके तहत गरीब प्रवासी किसी भी राज्य में सार्वजनिक वितरण प्रणाली की दुकान से सब्सिडी दर पर राशन ले सकता है। लेकिन अभी सभी राज्यों ने इसे लागू नहीं किया है।

घर-बाहर दोनों जगह बेरोजगार हैं मज़दूर

मार्च, 2020 को प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने देशव्यापी लॉकडाउन का ऐलान कर दिया था। इसके बाद अभूतपूर्व रिवर्स माइग्रेशन शुरू हो गया था।

मनीष सिक्योरिटी गार्ड की नौकरी खोजने मार्च, 2020 में दिल्ली गए थे। लेकिन उसी दौरान लॉकडाउन शुरू हो गया। इसके बावजूद उन्हें उम्मीद थी कि दो महीने के बाद जब लॉकडाउन खुलेगा तो उन्हें कोई न कोई काम तो मिल ही जाएगा। वह दो महीने तक रुके रहे। उनके पास पैसे बिल्कुल नहीं थे। आखिरकार उन्हें घर लौटना पड़ा।

वह कहते हैं, 'हमें घर छोड़ कर बाहर जाना पड़ता है क्योंकि गांवों में कोई रोज़गार नहीं है। हमें काम पर लौटना ही होगा। गांव में क्या रखा है जो सोचा जाए।'

विजय कुमार को पहली बार जुहू तट पर जाकर समुद्र देखना याद है। लेकिन वह एक ही बार समुद्र देख पाए थे।

वह कहते हैं, 'मैं ओवरटाइम के साथ पांच हज़ार कमा लेता था। तीन हज़ार रुपये घर भेज देता था। लेकिन दो साल बाद मुझे घर लौटना पड़ा। इसके बाद मैं काम ढूंढने दिल्ली निकल गया।'

उन्होंने वेटर के तौर पर काम की शुरुआत की थी। 2020 में लॉकडाउन लगने के बाद वह गांव चले आए। उनके पास लगभग एक साल तक कोई काम नहीं था। वह इस साल अप्रैल में लौटे लेकिन होटल बंद था। उन्हें फिर अपने गांव लौटना पड़ा।

वह कहते हैं, बिहार में कुछ भी नहीं है। हमारे पास सीमित विकल्प हैं। हमें अपने हालातों से जूझने के लिए छोड़ दिया गया है।'

स्टैंडर्ड वर्कर्स एक्शन नेटवर्क (SWAN) के स्वैच्छिक रिसर्चरों की एक स्टडी के मुताबिक इस साल लॉकडाउन के दौरान प्रवासी मज़दूर जिस तरह असहाय थे, ठीक यही स्थिति 2020 में लगे लॉकडाउन में भी दिखी थी।

रिपोर्ट में कहा गया कि शहरों में फंसे या गांव लौट चुके मज़दूरों में से 81 फ़ीसदी ने कहा कि स्थानीय स्तर पर लगाए गए लॉकडाउन या प्रतिबंधों से काम मिलना बिल्कुल बंद हो गया था।

रिपोर्ट में कहा गया है कि इनमें से सिर्फ 68 फीसदी लोगों ने कहा कि उन्हें पिछले महीनों में किए गए काम का पूरा या थोड़ा भुगतान हुआ है।

बेरोज़गारी के साथ ही राशन कार्ड जैसे सामाजिक सुरक्षा के उपायों की नाकामी और मनरेगा में काम न मिलना प्रवासी मज़दूरों के लिए समस्या बना हुआ है। ■

कोरोना की दूसरी लहर और महिला

शांति सवैयां

जनवरी-फरवरी 2021 में लगा कि भारत में कोरोना महामारी खत्म हो गया है और हमलोग कोरोना मुक्त हो गए हैं। ऐसा लगा कि फिर से पुराने दिन लौटकर आ जायेंगे। महिलाएं जो तकरीबन एक साल से घरों में कैद हो गई थीं, वे सब कोरोना मुक्त वातावरण में क्या किया जाए, कहां जाया जाय आदि कुछ योजनाएं भी बनाने लगीं। कामकाजी महिलाएं जो घर से काम कर रही थीं, उन्हें लगा कि फिर से सुबह उठकर अपने काम पर जाने के लिए तैयार होंगी और अपने सहकर्मियों के साथ मिलकर काम करने लगेगी। लेकिन इस जालिम बहुरुपिया कोरोना को लोगों की खुशी देखी नहीं गई। मार्च-अप्रैल आते-आते कोरोना की दूसरी लहर का सामना भारत को करना पड़ा, यह एक हद तक तो अप्रत्याशित था, यह लहर नहीं सूनामी था।

कोरोना की दूसरी लहर का प्रभाव पुरुषों की तुलना में महिलाओं पर मेरे विचार से ज्यादा पड़ा है। पहली लहर से उबरे ही नहीं थे, दूसरी लहर का प्रकोप समाज में ऐसा पड़ा कि अचानक कोरोना संक्रमितों की संख्या बढ़ती गई। न तो सरकार ने इससे उबरने के लिए कोई ठोस तैयारी की थी और न ही हम सामाजिक स्तर पर तैयार थे। एक स्टडी के अनुसार पहली लहर की अपेक्षा दूसरी लहर में गर्भवती महिलाएं ज्यादा संक्रमित हुई और बच्चों को जन्म देने वाली महिलाओं की मृत्यु दर में 2 प्रतिशत का इजाफा हुआ। पूरे देश में लॉकडाउन होने के कारण संगठित और असंगठित क्षेत्रों में काम करने वाली महिलाओं पर आर्थिक और सामाजिक रुप से सबसे ज्यादा असर पड़ा। कई घरों में सिर्फ महिला ही आर्थिक रुप से घर संभाल रही थी और ज्यादातर मध्यमवर्गीय संयुक्त परिवारों में महिला और पुरुष दोनों मिलकर काम करते हैं ऐसे में दोनों का काम अचानक से बंद हो गया, जिसके कारण बहुत से

घरों में घरेलू हिंसा का सामना भी महिलाओं को करना पड़ा। सामाजिक, आर्थिक-सामाजिक और मानसिक रूप से पीड़ित महिलाओं ने अपने जीवन खत्म कर लिए और कुछ महिलाएं घर छोड़कर चली गई। प्रतिदिन किसी अपने को खोने का डर, भविष्य की अनिश्चितता हमेशा कुछ अनिष्ट होने की आशंका के साथ-साथ आर्थिक अभाव कोरोना की भयावहता को और ज्यादा बढ़ाता है। पुरुष अपने कुंठा को चीख-चिल्लाकर बाहर कर लेता है लेकिन महिलाएं अपने मौन में घुलती हुई अभाव के अर्थशास्त्र को साधती रहती हैं। दूसरी लहर का प्रभाव आर्थिक रुप से ज्यादा मानसिक रूप से पड़ा है। महिलाएं जो घर की धूरी होती हैं। कभी मां, कभी बहन, कभी पत्नी तो कभी बेटी, इन सभी रूपों को महामारी ने मध्यकालीन अवस्था में पहुंचा दिया है। जहां वह न घर से निकल सकती हैं और न ही कहीं आ-जा सकती हैं। मास्क ने हमेशा के लिए महिलाओं को पर्दे में डाल दिया, जिसका हमेशा से महिलायें विरोध करती थीं। अब वह रोजमर्रा के जीवन का स्थायी हिस्सा बन गया है। यह तो उन महिलाओं का हाल है जिनके साथ उनका परिवार

है। लेकिन जिन महिलाओं ने अपने पति, बेटा को खो दिया है वह आर्थिक रुप से कब संवर पाएंगे यह कहना मुश्किल है। अनाथों के लिए सरकार ने आर्थिक सहायता की घोषणा कर दी, लेकिन इन विधवा लाचार बूढ़ी मां जिसने अपना कमाऊं पूत को खोया है उनका क्या होगा। बहुत से मध्यम एंव संभ्रांत परिवारों में जो आर्थिक रुप से संपन्न है लेकिन उनके परिवार के सदस्यों की कोरोना से मृत्यु हो गई वह अकेली है। कोरोना के डर से उनके मदद के लिए भी कोई आगे आता नहीं है। बहुत सारी ऐसी घटनाएं जो मेरे सामने घटित हुई है, उनको बयां करना किसी डरावनी चलचित्र से कम नहीं है। किसी भी परिवार के लिए जिसने कोरोना का प्रत्यक्ष-अप्रयक्ष रुप से सामना किया किसी डरावने सपने से कम नहीं है। मैं कुछ परिवारों में हुई घटना का जिक्र कर रही हूं। मेरी मां की मृत्यु पिछले साल 2020 जुलाई में हुई, जो कि सामान्य मृत्यु थी, लेकिन उस समय कोविड एक दम चरम पर था। अस्पताल में डॉक्टरों ने ही आईसीयू वार्ड में भर्ती करके उनका सही तरह से इलाज नहीं किया। अस्पताल में कई स्वास्थ्यकर्मी संक्रमित थे। जिसके कारण मरीजों को भर्ती करके इलाज नहीं किया गया। बहुत सारे मरीजों की मृत्यु हो गई, उसका कारण कोरोना बताया गया, उसमें मेरी मां भी शामिल थी। बंदी के कारण हम कुछ कर नहीं पाएं लेकिन मैंने उपायुक्त से बात करके अपनी मां का दाह संस्कार किया। हमें मां का पार्थिक शरीर दे दिया गया था। अस्पताल प्रबंधन की गलती से कोरोना से मृत्यु बताया। हमें 15 दिनों के लिए क्वारनटाइन किया गया। इसका सामाजिक रुप से हमारे परिवार में ऐसा असर पड़ा कि हम अभी तक उबरे नहीं हैं। गांव में कोई दिक्कत नहीं हुआ क्योंकि सबको मालूम था कि एक महीने से मां अस्पताल में भर्ती थी। सारे संस्कार अच्छे से हो गये। लेकिन जमशेदपुर में जहां हम रहते हैं, एक वर्ष होने के बाद भी पड़ोसी हमसे बातचीत नहीं कर रहे हैं। उन लोगों ने हमसे दूरियां बना ली है। हमें देखकर अपने घर में बंद हो जाते हैं। एक परिवार में पति के मरने के बाद पत्नी बच्चों और बुजुर्गों को छोड़कर चली गई। दूसरे एक परिवार में पूरा परिवार पोजिटिव हो

गया। पति-पत्नी दोनों को अस्पताल में भर्ती कराया गया। घर में बुजुर्ग और छोटे बच्चे थे वह भी पोजिटिव हो गए। पड़ोसियों ने कोई मदद नहीं की और न ही अपने परिवार के वैसे सदस्य जो अलग रहते थे वह भी मदद को आगे नहीं आए। एक दूर की रिश्तेदार जो अस्पताल में खून की व्यवस्था करने से लेकर, उनके बाकी सदस्यों को जो घर में ही क्वारनटाइन थे उनको एक महीने तक प्रतिदिन खाना देना और फिर अपने काम पर जाना करती रही। कुछ ऐसी भी महिलाएं हैं जिनको उनके खुद के परिवारवालों ने कहा कि आप कोरोना पीड़ित से रोज आमना-सामना करती हैं इसलिए आप हमारे साथ नहीं रह सकती। इतना ही नहीं, उन्हें पति के द्वारा प्रताड़ित भी किया गया। एक तरफ एक अकेली महिला जो खुद कोविड पोजिटिव थी अपने कोरोना पोजिटिव ससूर को अपने पीठ पर लाद कर अस्पताल लेकर गई लेकिन उनके ससूर को समय पर इलाज नहीं मिला जिससे वह नहीं बच पाए। यकीन मानिये हम चाहकर भी कोरोना से पहले के सामाजिक अवस्था को फिर से स्थापित नहीं कर पाएंगे। कोरोना ने जीवन के हर पहलू को न सिर्फ झकझोरा है बल्कि सामाजिक ताने-बाने को भी तोड़ा है। दिखावे के लिए ही सही पहले भाईचारा था। कोरोना ने मौत का भय दिखाकर इस भाईचारे की भी नई परिभाषा गढ़ दी है। इसने लोगों को यह समझा दिया कि व्यक्तिवादी समाज

और जवानी के गुलछर्रे सामान्य दिनों में तो मजा देता है लेकिन कोरोना जैसी भयावहता का सामना संयुक्त परिवार के साथ ही संभव है। यह हमारे समाज की पढ़ी-लिखी तथाकथित प्रगतिशील महिला जो उन्मुक्तता और 'मैं, मेरा पति और मेरे बच्चे' को ही अपना जीवन समझती थी उनके भी अपने विचारों के पुनर्मूल्यांकन का वक्त है।

इस तरह के महामारी का सामना महिला हो या पुरुष कभी भी अकेले नहीं कर सकता है लेकिन परिवार तथा समाज की सहभागिता और सहयोग से इसका मुकाबला आसानी से किया जा सकता है। लेकिन इसका एक नकारात्मक पहलू भी है। महामारी के कारण पहले के मुकाबले महिलाओं पर घरेलू काम और परिवार की देखभाल की ज्यादा जिम्मेदारी आन पड़ी है। यूएन विमेन के नए आंकड़ों के अनुसार कोरोना महामारी के कारण हम लैंगिक समानता में हुई बढ़ोत्तरी के मामले में 25 साल के पुराने स्तर तक पिछड़ सकते हैं। यूएन विमेन की डिप्टी एक्जीक्यूटिव अनीता भाटिया के अनुसार हमने पिछले 25 वर्षों में जो प्रगति की है, वह एक साल में खत्म हो सकती है।'

महिलाओं के लिए रोजगार और शिक्षा के अवसर कम हो सकते हैं तथा महिलाएं खराब मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य की शिकार हो सकती है। इस बीच सबकुछ खो देने के भय ने लोगों को विशेषकर महिलाओं को अध्यात्म के बहाने अंधविश्वास की ओर धकेल रहा है। जो किसी भी सभ्य समाज में स्वीकृत नहीं है। गांव हो या शहर महिलाएं पूजा-पाठ, हवन और ओझा-गुणी के चक्कर लगा रही हैं। उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ में कोरोना माई के मंदिर का निर्माण भी हो गया। समाज किस दिशा में जा रहा है, इस मंदिर की स्थापना से समझा जा सकता है। तरह-तरह की अफवाहें फैलती जा रही हैं जैसे महिलाएं वैक्सीन न लें, लेने से बांझ हो जाएगी, विकृत बच्चे पैदा होंगे, शारीरिक दुर्बलता आ जाएगी या कोरोना वैक्सीन लेने से मृत्यु हो जाएगी इत्यादि। जिसका नकारात्मक प्रभाव महिलाओं पर पड़ा है। महामारी के दौरान घरों के दायरे में सीमित रहने के कारण परिवार भीड़ की शक्ल लेता जा रहा है। जिससे घरेलू हिंसा में भी बढ़ोतरी हुई है। यह तो हाल है उन महिलाओं का जो परिवार तक सीमित थी, स्वयं सहायता समूह जो महिलाओं द्वारा संचालित होती है उनपर कोरोना के कारण होने वाले लॉकडाउन का काफी नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। कुछ स्वयं सहायता समूह मास्क, सैनेटाईजर आदि बनाकर कुछ हद तक अपने को बचा पायी है, लेकिन अधिकांश महिला समूह की वजूद पर ही कोरोना ने प्रश्नचिन्ह लगा दिया है।

इतना सबकुछ नकारात्मक होने के वावजूद कोरोना ने कुछ रिश्तों की अहमियत भी समझा दी। हम सबने देखा कि अपनी स्वास्थ्य की चिंता किए बिना एक बहू ने ससूर के प्रति अपना धर्म निभाया। एक बेटी अस्पताल में मां को ऑक्सीजन नहीं मिलने पर अपने से सांस दे रही थी। एक मां को संक्रमण के डर से बेटों ने अग्नि देने से मना कर दिया तो बेटी ने अग्नि देकर अपना धर्म निभाया। उसी तरह एक और बेटी ने सगे संबंधियों के मां-बाप के दाह संस्कार करने से मना करने पर अपने आंगन में मां-बाप का दाह संस्कार किया। कोरोना ने हमें सिर्फ यह नहीं दिखलाया कि परिवार और समाज बुरे वक्त में कैसे दूर हो जाते हैं बल्कि सही मायने में अपने रिश्तों की पहचान भी करायी है। इतना सबकुछ होने के वावजूद मेरा मानना है कि आने वाले समय में हम महिलाएं फिर से पूरे जोश के साथ समाज में अपना सहयोग और योगदान कर पाएंगे। हां! भूमिका अवश्य ही बदली हुई जरुर होंगी। ■

कोरोना काल के मेरे अनुभव

आलोका

"एक तो करेला ऊपर से नीम चढ़ा।" यह उक्ति कोरोना की दूसरी लहर पर सटीक बैठती है। कोरोना जैसी घातक महामारी और ऊपर से स्वास्थ्य केन्द्रों की अराजकता। लोगों को अस्पताल में न बिस्तर मिल रहा था, न ऑक्सीजन, न वेंटिलेटर। लगातार बज रहे एंबुलेंस की सायरन मन में दहशत पैदा कर रही थी। इस बार का कोरोना काल काफी तनावपूर्ण रहा। दैनिक कार्य का बढ़ता बोझ, ऊपर से नाते रिश्तेदारों के संक्रमित होने की खबर ने जिन्दगी को अत्यन्त ही तनावपूर्ण बना दिया था। किसी का फोन आने पर फोन उठाने पर भय लगता यह सोचकर न जाने क्या संदेश हो।

इसी बीच घर में भाभी की तबियत ज्यादा खराब हो गयी। बुखार तो घरेलू उपचार से ठीक हो गया पर खांसी जाने का नाम ही नहीं ले रही थी। वह अस्पताल जाना नहीं चाहती थी और घर के लोग उसे अस्पताल भेजने पर उतारु थे। घर में कोविड संक्रमण क्या आया रिश्ते को तार-तार होने में देर नहीं लगी। घर के सबसे नीचे के कमरे में वह कैदी जैसा जीवन व्यतीत करने लगी। आयुर्वेद और होड़ोपैथी दवा से वह ठीक होने लगी। बाद में डॉक्टरों के परामर्श से विटामिन की गोलियां और गर्म पानी का भाप लेने लगी। इन सब उपचारों से वह पूर्णतः ठीक हो गयी। एक विधवा औरत के जीवन में कोरोना कितनी पीड़ा लेकर आया भाभी के उदाहरण से हम समझ सकते हैं।

बड़ी दीदी एवं भाटू (जीजा) भी बीमार थे। उनसे फोन पर बात कर उनके लिए जरुरत की सामान भिजवाने की व्यवस्था करने में काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ा। दीदी तो होड़ोपैथी दवाई से चार-पांच दिनों में ठीक हो गयी पर भाटू को होड़ोपैथी में विश्वास नहीं था, फिर उनका जांच हुआ कोरोना पॉजिटिव के परिणाम आने पर दवा चलने पर वह भी ठीक हो गये। परन्तु इस लॉकडाउन में 10 किलोमीटर दूर रहने वाले लोगों के लिए घरेलू जरुरत की सामान और दवा भेजना बहुत कष्टदायक था। सामान एवं दवाई की कीमत से आने जाने का खर्च ज्यादा बैठ रहा था। ज्यादा खर्च के बावजूद इन सब कार्यों में कोई कोताही नहीं बरती गई। इससे मालूम पड़ता है कि जान की कीमत क्या होती है।

गांव से सूचना आ रही थी कि सब बीमार हैं पर विपरीत परिस्थिति में कुछ नहीं कर सकते थे। इससे भी मन व्यथित रहता। इसी बीच मौसेरा भाई गुजर गये। गांव के डॉक्टर ने टाइफाइड बताकर सुई लगाया जिससे स्थिति बिगड़ने लगी। शहर आकर कोरोना वार्ड में इलाज शुरु हुआ परन्तु वे फिर वापस घर न लौट पाये।

साथी दयामनी जी की भाभी को भी मलेरिया हो गया। रिम्स में उनको एडमिट करवाना ऑक्सीजन की व्यवस्था इत्यादि तो किसी तरह हो गया। पर जब वे ठीक होकर घर आयीं तो उनको भोजन कौन देगा जैसे सवाल सबके सामने था। उन्हें अलग रखकर उनकी भोजन व्यवस्था करने में दयामनी दी काफी थक जाती थी। दयामनी दी की चिंता तो हम करते पर उनको सहयोग नहीं कर पाते जिसका दर्द किसी को सुना नहीं सकते।

इस महामारी ने किसी को कुछ समझने का अवसर नहीं दिया। हम औरतों के लिए जीवन जीना सहज नहीं रहा। पर महामारी में रिश्तों को जोड़कर रखने में महिलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। साथ ही हमारे पारंपरिक खान-पान ने भी साबित कर दिया कि इससे शरीर का इम्यून सिस्टम मजबूत रहता है। खैर वक्त के साथ डर का माहौल खत्म तो हो रहा है पर तीसरी लहर की आने की चिन्ता से लोग भयभीत भी हैं। ■

कोरोना की दूसरी लहर में सीख देती महिलाएं

डॉ सुरिन्दर कौर नीलम

महिलाएं समाज और परिवार की धूरी हैं। वे घर और बाहर दोनों की जिम्मेदारी बखूबी निभाना जानती हैं। कोरोना की दूसरी लहर ने महिलाओं को विशेष रूप से प्रभावित किया है। हर क्षेत्र की महिलाएं इस अदृश्य वायरस से जंग लड़ रही हैं और जीत हासिल करने में कामयाब भी हो रही हैं।

यदि हम घरेलू महिलाओं की बात करें तो उनके काम पहले की अपेक्षा बढ़ गये हैं। पति और बच्चे घर पर ही रहने के कारण दिन भर उनके खाने पीने और अन्य फरमाइशें पूरी करने में ही समय निकल जाता है। कामवाली बाई को भी सुरक्षा की दृष्टि से आना मना है ऐसे में घर की महिला पर अतिरिक्त बोझ उसे अपने लिए वक्त नहीं देता है। कोरोना की दूसरी लहर ने फिर एक बार आर्थिक मंदी की दस्तक दी है, जिससे निपटने के लिए महिलाओं को ही बजट में कटौती कर आर्थिक संतुलन बनाए रखना पड़ता है। बच्चों के स्कूल जाने के बाद जहां महिलाएं कुछ घंटों में सारे काम निपटा कर अपने लिए समय निकाल लेती थीं वहां अब छोटे बच्चों के साथ आनलाइन पढ़ाई में भी साथ बैठना पड़ता है। इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता है कि कुछ घरों में पुरुष भी महिलाओं को बहुत सहयोग कर रहे हैं।

कोरोना की दूसरी लहर ने करीब हर तीसरे घर को अपनी चपेट में लिया है। ऐसे में घर की महिला कोरोना पॉजिटिव होने के बावजूद परिवार के सदस्यों की उचित देखभाल कर रही है। स्वयं खाना बनाना, खिलाना, गरम पानी, काढ़ा, भाप इत्यादि सभी कार्य ठीक ढंग से निभा रही हैं और अपनी हिम्मत और मनोबल के बल पर खुद स्वस्थ हो कर परिवार को भी इस संकट से बाहर निकालने में हर प्रकार का सहयोग कर रही हैं। हालांकि इस बीच हर दिन हमें अपने और पराए लोगों के खोने की दुखद खबरें मिल रही हैं फिर भी महिलाएं हर स्थिति से निपटना जानती हैं। ऐसी महिलाएं समाज में प्रेरणास्रोत होती हैं।

इन्हीं महिलाओं में जो कामकाजी महिलाएं हैं और घर से ही कार्यालय का काम करतीं हैं उनके लिए गृह कार्यों की आपाधापी के बीच ऑफिस को भी संभालना तथा धैर्य पूर्वक सुरक्षित रहते हुए संतुलन बनाए रखना अधिक चुनौतीपूर्ण है।

पुलिस महकमे में काम करने वाली महिलाएं भी बधाई की पात्र हैं। कार्यालय से लेकर सड़कों तक उनका काम जोखिम भरा है। घर परिवार से दूर ये कोरोना वारियर के रूप में मुस्तैदी से लगी रहती हैं। अनेक बार इन्हें बेवजह लोगों के गुस्से का शिकार भी होना पड़ता है फिर भी वे धैर्य पूर्वक अपनी ड्यूटी करती हैं। सलाम है ऐसी महिलाओं को।

स्वास्थ्य विभाग से जुड़ी महिलाओं की सेवाओं को नमन है। महिला डॉक्टर, नर्सें एवं अन्य स्वास्थ्य कर्मियों को अपनी जान बचाते हुए अन्य कोरोना रोगियों की सेवा करने में अपने परिवार को भी भूल जाना पड़ता है। कहीं परिवार भी संक्रमित न हो जाए इसी कारण वे घर नहीं जा पातीं हैं। अपने बच्चों को गले नहीं लगा पातीं हैं। सारा दिन पीपी किट, मास्क आदि पहन कर रोगियों के बीच रहना खतरे से खाली नहीं। अभी टीकाकरण अभियान में भी इन महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है। ग्रामीण क्षेत्रों में जाकर कोरोना से बचाव और टीकाकरण के प्रति लोगों को जागरूक करने में भी महिलाओं को विशेष जिम्मेदारी निभानी होती है। सच पूछा जाए तो यही सच्चे देशभक्त की मिसाल है।

इनके अलावा महिला सफाईकर्मी का काम भी आसान

नहीं है। हर गली मोहल्ले में झाड़ू लगाना, घरों में जाकर कूड़ा उठाना, सड़कों पर झाड़ू लगाने के साथ अन्य सफाई संबंधी काम महिलाओं की मेहनत और लगन का परिचय देते हैं।

महिला शिक्षिका भी कोरोना काल में परेशान दिखाई देती हैं। पहले जहां विद्यालयों में जाकर निश्चित समय पर घर आ कर थोड़ा सुकून मिलता था अब वो आनलाइन पढ़ाई में लगी रहती हैं। आनलाइन पढ़ाई में न ही बच्चे ढंग से समझ पाते हैं और न ही शिक्षकों को संतुष्टि मिलती है। परीक्षाओं को भी बच्चे गंभीरता से नहीं लेते। कई स्कूलों में तो तनख्वाह भी कम कर दी गई है जिससे आर्थिक संकट भी झेलना पड़ता है।

समाज सेवा के क्षेत्र में लगी महिलाएं भी सराहनीय कार्य कर रही हैं। व्यक्तिगत रूप से अथवा संस्थाओं से जुड़ कर वे कोरोना काल में जरूरतमंदों को उचित सहयोग दे रही हैं। जैसे कोरोना पीड़ित रोगियों को खाना बना कर पहुंचाना, मास्क बना कर बांटना, दवा आदि उपलब्ध कराना।

कोरोना की दूसरी लहर की शुरुआत में बेड, आक्सीजन, दवाओं की किल्लत और कालाबाजारी से जब लोग परेशान थे तो वाट्सअप ग्रुप में महिलाओं ने घर बैठे बैठे ही एक दूसरे की हर संभव सहायता की। जहां जिसकी पहुंच और क्षमता है वे सभी लोगों को मदद कर रही हैं और इस जंग को जीतने में अपना योगदान दे रही हैं।

साहित्यकार, लेखक और कवयित्री भी अपनी लेखनी के माध्यम से लोगों को जागरूक करने में लगी हुई हैं। आनलाइन कार्यक्रमों के जरिए कोरोना काल में मनोबल बनाए रखने के संदेश को प्रसारित करने में महिलाएं बढ़-चढ़कर हिस्सा ले रही हैं।

इस तरह देखा जाए तो कोरोना की दूसरी लहर का युद्ध जीतने में हर महिला जी जान से देश के साथ खड़ी है। हमें पूरा विश्वास है कि हम इस युद्ध को अवश्य जीतेंगे।

वक्त बुरा ये कट जाएगा इक दिन धीरे-धीरे
ज़ख्म सभी का भर जाएगा इक दिन धीरे-धीरे। ■

कोरोना की दूसरी लहर की बोझ ढोती महिलाएं

सविता गुप्ता मौलिक

वर्ष 2020 में पूरी तरह से कोविड-19 वायरस के खौफ में जनमानस रहा। इस वर्ष यानी 2021 से जन जीवन धीरे-धीरे पटरी पर लौटने लगा था। लोग आशंकित तो थे कि कोरोना की दूसरी लहर आयेगी पर दूसरी लहर इतना विद्रूप रुप लेकर आयेगी इसकी कल्पना किसी ने नहीं की थी। कोरोना की दूसरी लहर की मारक क्षमता की रफ्तार काफी घातक रही। किसी को संभलने का मौका नहीं मिला। कोरोना की दूसरी लहर ने कई तरह से मानव जीवन को प्रभावित किया। बहुतों ने अपने परिजनों को खोया तो कईयों ने अपने रिश्तेदार बंधु बांधव को। चारों तरफ हाहाकार मच गया। जब भी कोई आपदा या महामारी आती है तो उसका असर महिलाओं पर ज्यादा पड़ता है। कोरोना महामारी में भी महिलायें बुरी तरह प्रभावित हुई हैं। महिलायें कई तरह से चुनौतियों का सामना कर रही हैं। घरेलू महिला हो या कामकाजी या यों कहें कि हर वर्ग, हर समुदाय, हर धर्म की महिलायें इससे प्रभावित हुईं हैं। सभी को घर को व्यवस्थित चलाने में काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा है। सुबह से लेकर रात तक महिलायें भोजन व्यवस्था, घर की साफ-सफाई, बच्चों एवं बुजुर्गों की देखभाल, बच्चों की ऑनलाइन क्लास इत्यादि का कार्य करते-करते बेहाल हो जा रही हैं। कोरोना की वजह से महंगाई भी बहुत बढ़ गयी है। ऊपर से घर की कमाई कम हो गयी है। सभी के बीच में

आपसी तालमेल बैठाने में हम महिलाओं को काफी मशक्कत करनी पड़ रही है। यदि महिलायें कामकाजी हैं तो उन्हें तो दोहरा बोझ ढोना पड़ रहा है। कार्यालय का कार्य और घरेलू कार्य के बीच तारतम्य बैठाने में काफी कष्ट हो रहा है। इतना कुछ करने के बावजूद भी उन्हें घरेलू हिंसा का शिकार होना पड़ रहा है। लॉकडाउन के कारण घर के पुरुष सदस्य घर पर ज्यादा समय बिता रहे हैं तो ऐसे में घर का काम कुछ ज्यादा ही बढ़ गया है। पहले पुरुषों के काम पर चले जाने एवं बच्चों को स्कूल भेजने के पश्चात घर के काम निबटाकर महिलायें थोड़ा बहुत आराम कर लेती थीं, आपस में मिल बैठकर सुख-दुख बतियाती थीं, पर अब इन सबके लिए इनके पास समय नहीं बच पा रहा है। इससे उनके सेहत पर बुरा असर पड़ रहा है। कईयों के काम छूट गये हैं। एक तरह से हम कह सकते हैं कि महिलायें शारीरिक, मानसिक एवं आर्थिक रुप से काफी प्रभावित हुई हैं। अब आशंका जताई जा रही है कि तीसरी लहर आयेगी वह बच्चों के लिए घातक होगी। बच्चों को सुरक्षित रखने की अतिरिक्त चिंता उन्हें मानसिक अवसाद की ओर ले जा रही है। इससे उबरने में उन्हें समय लगेगा। इतिहास गवाह है कि कितनी भी विपत्ति आयी है महिलाओं ने धैर्यपूर्वक उसका सामना किया है। कोरोना की दूसरी लहर की त्रासदी को भी हम अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति के बल पर एक न एक दिन जरुर परास्त करेंगे। ■

कोरोना प्रोटोकॉल की पालन करती महिलाएं

फातिमा

कोरोना महामारी के कारण पूरी दुनिया परेशान है। पहली लहर से दूसरी लहर तक ने हम सबको यह महामारी बहुत ही सबक सिखा दिया। आर्थिक संकट के कारण पैसे की बचत की अहमियत समझ में आयी। इस महामारी से पहले समाज में जो आर्थिक रुप से सक्षम थे वे दूसरे की मदद भी कर दिया करते थे। लेकिन इस बीमारी के कारण रिश्तों में दूरी बन गई। सारे रिश्ते तार-तार हो गये।

हमारे कोडरमा क्षेत्र के एक गांव में बहुत ही दर्दनाक घटना घटी। उस गांव का एक पुरुष कमाने के लिए दिल्ली गया हुआ था। लॉकडाउन के समय काम न होने पर गांव वापस आ गया। उसकी पत्नी उसे क्वारंटाइन में रहने बोल रही थी, पर उसका पति मान ही नहीं रहा था। उसने उससे बहुत विनती की कि घर में छोटे-छोटे बच्चे हैं। कोरोना का प्रोटोकॉल भी है कि बाहर से आने पर कुछ दिन अलग रहना चाहिए पर उसके किसी बात का उसके पति पर असर नहीं हो रहा था। थक-हार कर उस महिला ने पति को कमरे में बंद कर बाहर से ताला लगा दिया। इसके पश्चात उसने पुलिस को फोन किया। पुलिस आकर उसके पति को ले गई। उसका पति बार-बार बोल रहा था कि मुझे कोरोना नहीं है। परंतु गांव के सभी के सलामती एवं बच्चों के कारण महिला ने यह कदम उठाया। बाद में उसका जांच कराया गया। जांच में नेगेटिव आने पर उसे छोड़ दिया गया। घर वापस आने के बाद उस पुरुष ने आत्महत्या कर ली और अपने मौत का जिम्मेदार अपनी पत्नी को ठहराया कि इसी के कारण मैं आत्महत्या कर रहा हूं।

जिस गांव की सलामती के लिए महिला ने यह सब किया आज वही गांव उसे कसूरवार मान कर उसे दोषी ठहरा रहे हैं। इस पूरी घटना में महिला का कोई दोष नहीं है। उसने तो केवल कोरोना प्रोटोकॉल का पालन किया। इस कोरोना महामारी ने उस महिला को अकेला तो कर ही दिया। साथ ही पूरे परिवार पर संकट आ गया। कई घर इसके कारण बर्बाद हो गये। सतर्कता एवं बचाव ही इस बीमारी का एकमात्र इलाज है। इस बीमारी ने हमें काफी डराया है और बहुत कुछ सिखाया भी है। ■

कोरोना की दूसरी लहर से सबक

सुनील मिंज

कोरोना संक्रमण से एक 93 साल की बूढ़ी व्यक्ति ठीक हुई और जब वह अस्पताल से डिस्चार्ज होने लगी तब उसे उस अस्पताल के स्टॉफ ने एक दिन के वेंटिलेटर, ऑक्सीजन के इस्तेमाल करने का बिल 13000 हजार रुपये का थमा दिया जो किसी कारणवश (बाकी बिल से) छूट गया था जिसे देखकर वह बूढ़ी व्यक्ति जोर-जोर से रोने लगी।

उसे रोते देख कर डॉक्टर ने उस व्यक्ति को कहा आप रोइए मत, यदि आप यह बिल नहीं भर सकते हैं तो जाने दीजिए। तब उस बूढ़ी ने एक ऐसी बात कही जिसे सुनकर सारा स्टॉफ रोने लग गया उसने कहा कि मैं बिल की रकम पर नहीं रो रही और न ही मैं इसे चुकाने में असमर्थ हूँ, मैं यह बिल भर सकती हूँ। मैं तो इसीलिये रो रही हूँ कि मैं 93 साल से ये सांसें ले रही हूँ किन्तु मैंने कभी भी उसकी पेमेंट नहीं की। यदि एक दिन के सांस लेने की कीमत 13,000 हजार है तो आपको पता है कि मुझे प्रकृति को कितनी रकम चुकानी है? इसके लिए मैंने कभी भी जंगल का धन्यवाद नहीं किया। धर्मेश का बनाया हुआ यह संसार, यह शरीर, ये सांसे अनमोल हैं जिनकी पेमेंट हम उसका धन्यवाद करके ही कर सकते हैं।

बुजुर्ग महिला का यही कहना था कि हम मानव जाति को पेड़ पौधे का संरक्षण करना चाहिए। यही पेड़ पौधे हमें ऑक्सीजन देते हैं। हमें लगता है कि महिलाएं ही पर्यावरण संरक्षण के इस काम में अग्रिम पंक्ति में खड़ी हैं। पर्यावरण विनाश के खिलाफ चल रहे आंदोलन में मेधा पाटकर का नाम सर्वोपरि है। चिपको आंदोलन में महिलाओं के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। महिलाएं जंगलों से साग-पात, कंद मूल, दातून, पतई आदि कई तरह के वनोत्पाद का इस्तेमाल बगैर जंगलों

को नुकसान पहुंचाए करती रही हैं और कोरोना महामारी काल में उन्हें ही इसका खामियाजा भुगतना पड़ रहा है। कई उदाहरण हैं जिसमें ऑक्सीजन नहीं मिलने के कारण लोगों की मौत हुई है।

सख्त पाबंदियों के बावजूद वीकेंड कर्फ्यू के दौरान दूध सब्जी की दुकानों को छोड़कर सबकुछ बंद नहीं रखी गयी। दूकानदार दूकान का आधा शटर खोल के रखते थे। खरीददारी चालू थी। राशन की दुकानों में भीड़ लगी रहती थी। वहां कोरोना के गाइडलाइनों का तनिक भी पालन नहीं हो रहा था। गांव में शराब की दुकानें पूर्णरूप से खुली थी। भट्ठी में लोग जमा होकर शराब पीते थे। मेडिकल एमरजेंसी के अलावा कोई भी व्यक्ति बाहर घूमता मिले तो 1,000 की जगह अब 10,000 का चालान और 15 दिन के लिए वाहन सीज के कायदों को भी ग्रामीण इलाकों ने ठेंगा दिखा दिया।

बिना मास्क पाए जाने पर 500 की जगह 5,000 का चालान भी असरदार नहीं रहा।

विवाह समारोह में सिर्फ 21 व्यक्ति की ही अनुमति थी अन्यथा 50,000 का चालान था। प्रायः सभी जगह इस नियम की अनदेखी की गई। गांव अपने आप में ही

एक कंटेन्मेंट जोन से कम नहीं लेकिन वहां भी कोरोना आ धमका। रांची में कोरोना का बयार चल रहा था। गांव के लोग शादी - विवाह में चले जाते और कोरोना संक्रमित होकर वापस आते। इस तरह से समुदाय में महामारी फैली। ईसाई आदिवासी में बीमारी फैलाने वाली एक जगह चर्च भी था। चर्च में पाप स्वीकार करने के समय विश्वासी और पुरोहित दोनों ही संपर्क में आ जाते थे। कई पुरोहित इस दरम्यान संक्रमित हुए। क्रूस रास्ता और टोला चालीसा मिस्सा पूजा और पूजा गाना की तैयारी में भी कई लोग संक्रमित होते चले गए।

गलती कहां हो रही है? बीमारी को पहचानने में देरी, बीमारी को स्वीकार करने में देरी, इलाज शुरू करने में देरी, कोरोना (RT PCR) टेस्ट कराने में देरी, लक्षण होने के बावजूद टेस्ट रिपोर्ट का इंतजार करना और तुरंत इलाज शुरू नहीं करना, बीमारी की गंभीरता को समझने में देरी, दवाइयों से डर के कारण सारी दवाइयां खाने के बजाय आधी अधूरी दवाइयां खाना।

पांचवे या छठे दिन तबियत ज्यादा खराब होने पर भी सीटी स्कैन और ब्लड टेस्ट नहीं कराना।

दूसरे स्टेज का ट्रीटमेंट (स्टीरॉयड) जल्दी शुरू नहीं करना और इसमें देरी करना। Steroid की अपर्याप्त डोज लेना। साथ में Anticoagulent (खून पतला करने और खून में थक्का बनाने से रोकने की दवा) न लेना।

ऑक्सीजन लेवल नापने में लापरवाही के कारण ऑक्सीजन लेवल गिरने (Hypoxia) को समय से पकड़ न पाना।

ऑक्सीजन गिरने पर अस्पताल पहुंचने में देरी। छठे दिन HRCT टेस्ट में 15/25 या उससे ऊपर का स्कोर आने पर भी घर में इलाज और तुरंत अस्पताल में भर्ती हों कर Intravenous (इंजेक्शन से) ट्रीटमेंट न लेना।

बीमारी के दौरान इस कहावत का ध्यान रखना आवश्यक था कि पहला हफ्ता आपके हाथ में। दूसरा हफ्ता

आपके डॉक्टर के हाथ में और तीसरा हफ्ता भगवान के हाथ में।

संक्रमित लोगों में इतना भय पैदा हो गया था कि वे अपना कोरोना टेस्ट तक नहीं कराते थे। उसका वैक्सीन लेना तो दूर। सहिया की बात तो कोई मानता नहीं था। तब ब्लॉक के कर्मचारी, स्कूल शिक्षक आदि को इस काम में लगाया गया। अब इस विषय के प्रति लोगों में जागरूकता फैल रही है।

इस महामारी के दौरान महिलाएं घरों में कैद रहीं। रोजगार गारंटी योजना के तहत कुआं आदि योजनाएं चलायी जा रहीं थीं लेकिन वह उनके अनुकूल नहीं थी। बाहर का ठीकेदार बाहर के मजदूरों को लेकर काम करा रहा था। उसमें एक महिला को मेट का काम मिल जाता था। आम बागवानी योजनाओं में महिलाओं ने बढ़ चढ़ कर काम किया। झारखंड स्टेट लाइवलिहूड प्रोमोशन सोसाइटी के साथ बहुत महिलाएं जुड़ी हुई हैं। उनकी गतिविधियां नियमित रूप से संचालित होती रहती थीं लेकिन कई महिलाओं के कोरोना पोजिटिव हो जाने के कारण गतिविधियां बंद कर दी गयी। ऐसी परिस्थितियों में महिलाएं घर में ही रहने को विवश हैं। घर में रहकर कुछ दीदी बाड़ी कर रही हैं। कई महिलाएं तो महामारी को नजरंदाज करते हुए निर्माण उद्योग और मछली पालन, कपड़ा फैक्ट्री में सिलाई आदि का काम करने के लिए पलायन कर गयी। ■

कोरोना काल में भारतीय महिलाओं को हो रही है सबसे अधिक परेशानी : रिपोर्ट

दयानिधि

नए शोध से पता चला है कि भारत में महिलाओं को कोरोनावायरस महामारी के दौरान पुरुषों की तुलना में बहुत अधिक नुकसान हुआ है। पहले से ही महिलाएं लिंग आधारित असमानताओं का सामना करती रही हैं, उसके ऊपर कोरोना ने इन्हें आर्थिक रूप से गरीबी में धकेल दिया है।

यूनिवर्सिटी ऑफ मैनचेस्टर के ग्लोबल डेवलपमेंट इंस्टीट्यूट की प्रोफेसर बीना अग्रवाल ने शोध के माध्यम से पाया कि महिलाओं को कोविड लॉकडाउन के दौरान पुरुषों की तुलना में नौकरियों का अधिक नुकसान हुआ है, उनकी लॉकडाउन के बाद रिकवरी भी बहुत कम रही है। वे अपनी छोटी सी बचत और संपत्ति के दोहरे कार्य बोझ, डिजिटल असमानता और प्रतिबंधात्मक मानदंडों के कारण आर्थिक असुरक्षा का सामना करती हैं।

शहरी महिलाओं ने लॉकडाउन के दौरान अपनी पूरी अथवा अधिकतम आय के नुकसान होने के बारे में बताया। घरेलू कामगारों के रूप में कार्यरत लोगों की बड़ी संख्या में काम पर रोक लगा दी गई थी, कई अपने गांवों में वापस चले गए और अधिकांश तब से वापस नहीं आए हैं क्योंकि वे आसानी से अब वहां नहीं रह सकते हैं। यहां तक कि जो महिलाएं रोजगार खोजने में कामयाब रही, या स्व-नियोजित श्रमिकों के रूप में अपने व्यापार को फिर से स्थापित किया उनकी पहले जैसी आय नहीं हो रही है।

सीमित या बिना आय के जीवन यापन करने वाली गरीब महिलाओं को अपनी छोटी सी बचत को खर्च करना पड़ता है। कई लोग कर्जदार हो गए हैं और समय के साथ, अपनी सीमित संपत्ति जैसे छोटे जानवर, गहने या यहां तक कि व्यापार के अपने उपकरण, जैसे कि गाड़ियां बेचने के लिए मजबूर हो गए हैं। संपत्ति के नुकसान ने उनके आर्थिक भविष्य को गंभीर रूप से खतरे में डाल दिया, उन्हें भयंकर गरीबी में धकेल दिया है।

दरअसल, जब पुरुषों की नौकरी चली जाती हैं, तब भी महिलाएं बहुत अधिक प्रभावित होती हैं। उदाहरण के लिए, बेरोजगार पुरुष प्रवासियों के अपने घर गांवों में लौटने से स्थानीय नौकरियों की मांग अधिक बढ़ गई जो कि महिलाओं के लिए थी। महिलाओं पर घर के काम का बोझ, खाना पकाने, बच्चों की देखभाल करने और जलावन के लिए लकड़ी और पानी के भी काम लाने काफी बढ़ गये हैं। सामाजिक मानदंडों के कारण, जहां महिलाएं सबसे अंतिम में और सबसे कम खाती हैं, भोजन की कमी का बोझ महिलाओं पर अधिक पड़ गया है।

इसके अलावा, कोविड के दौरान घरों में भीड़ बढ़ने से घरेलू हिंसा में भी तेजी आई है, लेकिन कई महिलाएं मोबाइल फोन तक पहुंच नहीं होने के कारण अधिकारियों को इसकी सूचना नहीं दे सकती हैं। शोध में यह भी पाया गया कि कोविड के कारण पुरुष मृत्यु दर ने विधवा महिलाओं पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है, जो आने-जाने पर रोक-टोक का सामना करती हैं और इस कारण अलगाव बढ़ गया है। यह शोध वर्ल्ड डेवलपमेंट नामक पत्रिका में प्रकाशित हुआ है।

इस सब के बावजूद, अग्रवाल के शोध से पता चलता है कि ग्रामीण महिलाओं की आजीविका तब अधिक व्यवहार्य रही है जबकि वे किसी समूह आधारित

उद्यमों से जुड़ते हैं। यह केरल में विशेष रूप से स्पष्ट है, जहां राज्य सरकार ने बचत और ऋण के लिए महिलाओं के निकट समूहों को बढ़ावा दिया और इन समूहों के सदस्यों ने संयुक्त उद्यम, विशेष रूप से समूह खेती को अपनाया।

केरल के 30,000 महिला समूहों में से अधिकांश जो सामूहिक रूप से कोविड के पहले से ही खेती कर रहे थे, उन्हें इसने बड़े पैमाने पर आर्थिक नुकसान होने से बचाया, क्योंकि उनके पास कटाई के लिए समूह का श्रम था, कई ने अपनी उपज महिलाओं द्वारा संचालित सामुदायिक रसोई में बेची थी। इसके विपरीत, कई अकेले काम करने वाले पुरुष किसानों को श्रम की कमी या खरीदारों की कमी के कारण उपज का भारी नुकसान हुआ। पूर्वी भारत में, समूहों में खेती करने वालों ने भोजन अधिक सुरक्षित होने के बारे में बताया, क्योंकि उनके पास व्यक्तिगत छोटे किसानों की तुलना में अधिक खाद्यान्न की पैदावार थी, जिन्हें कम-विश्वसनीय सरकारी सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर निर्भर रहना पड़ता था।

अग्रवाल ने बताया कि भारत में 60 लाख स्वयं सहायता समूहों के बीच समूह उद्यमों के विस्तार की बहुत बड़ी संभावना है। महामारी के दौरान, इन स्वयं सहायता समूहों की लगभग 66,000 महिला सदस्यों ने लाखों मास्क, हैंड सैनिटाइटर और सुरक्षात्मक उपकरणों का उत्पादन करके खुद को बचाया। ग्रामीण क्षेत्रों में, समूह खेती इन समूहों के लिए स्थायी आजीविका प्रदान कर सकती है।

प्रोफेसर बीना अग्रवाल कहती हैं कि समूहों में काम करने के ये उदाहरण आजीविका को पुनर्जीवित करने के लिए महत्वपूर्ण सबक देते हैं, क्योंकि भारत आर्थिक सुधार के लिए नए रास्ते तलाश रहा है। वे सरकार और गैर सरकारी संगठन की सहायता के माध्यम से महिला-केंद्रित समूहों को मजबूत करने के महत्व पर प्रकाश डालते हैं इस प्रकार अर्थव्यवस्था को बदलने के लिए यहां अनेक अवसर हैं। ■

लॉकडाउन के दौरान बढ़े घरेलू हिंसा के मामले

झारखंड में कोरोना संक्रमण के खतरा को देखते हुए राज्य सरकार ने मिनी लॉकडाउन लगाया है, ताकि संक्रमण की संकट से निपटा जा सके। इस संकट में विवाहित महिला के लिए दोहरी आफत शराब बन गई है। यूं तो लॉकडाउन के दौरान आपराधिक घटनाओं में कमी आई है, लेकिन शराब की वजह से घरेलू हिंसा के मामले बढ़ गए है। स्थिति यह है कि प्रत्येक दिन औसतन पांच से अधिक मामले घरेलू हिंसा के आ रहे, जिसमें सबसे अधिक शराब पीकर मारपीट के मामले शामिल हैं।

राज्य में पिछले दो सफ्ताह से मिनी लॉकडाउन लगा है, जिसे स्वास्थ्य सुरक्षा सप्ताह का नाम दिया गया है। लॉकडाउन में जरूरत के सामानों की दुकानों के साथ-साथ शराब की दुकानें भी दो बजे तक खुली रहती हैं। लॉकडाउन के दौरान शराब पीने वाले लोग अपने घरों में नशे की हालत में हंगामा करने के साथ साथ पत्नी के साथ मारपीट कर रहे हैं। इससे पुलिस की डायल 100 पर घरेलू हिंसा की शिकायतें काफी आ रही है।

हैरानी की बात यह है कि इस बार डायल 100 पर सबसे ज्यादा मदद महिलाओं की ओर से मांगी जा रही है। मदद मांगने वाली महिला घरेलू हिंसा से पीड़ित होती हैं। स्थिति यह है कि राजधानी रांची में प्रत्येक दिन 7 से 8 ऐसे मामले आ रहे हैं, जो पति-पत्नी के बीच विवाद के होते हैं। इस विवाद का कारण शराब होता है।

लॉकडाउन में सबसे ज्यादा परेशानी नशे के आदी हो चुके व्यक्ति के परिजनों को है। नशे की हालत में लोग सिर्फ बाहर ही हंगामा नहीं करते हैं, बल्कि घर पहुंच कर पत्नी के साथ मारपीट भी करते हैं

- आधी दुनिया डेस्क

बच्चों के लिए कोरोना वायरस का 'राक्षस'! क्या यह पोलियो 'वायरस' से ज्यादा खूंखार है?

हेमंत

पूरे देश में फैली कोरोना महामारी की दूसरी लहर अभी ख़त्म नहीं हुई और तीसरी लहर की चर्चा शुरू हो गई है। ये लहर कब आएगी इसका ठीक अंदाज़ा लगा पाना अभी मुश्किल है, लेकिन डॉक्टरों और एक्सपर्ट्स का मानना है कि तीसरी लहर बच्चों के लिए बेहद ख़तरनाक साबित हो सकती है। कोरोना की पहली लहर में RT-PCR टेस्ट में चार फ़ीसद बच्चे पॉजिटिव पाए गये थे और दूसरी लहर में ये संख्या 10 प्रतिशत तक पहुँच गई है। आबादी के हिसाब से देखा जाये, तो देश में बच्चों की 30 करोड़ की आबादी का ये 14 प्रतिशत होगा। इंडियन काउंसिल फ़ॉर मेडिकल रिसर्च यानी आईसीएमआर ने फ़रवरी 2021 की अपनी सीरो रिपोर्ट में कहा था कि 25.3 फ़ीसद बच्चों में वायरस के एंटीबॉडी मौजूद थे। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो 25.3 फ़ीसद बच्चों को कोरोना संक्रमण हो चुका है!

पिछले एक साल और दो महीने से देश में 'कोरोना' वायरस का आतंक पसरा है। उससे आम जनता, सरकार और समाज जिस ढंग से जूझ रहे हैं, उसके मद्देनजर क्या यह कहना प्रासंगिक नहीं होगा कि हमारे देश-समाज में कोरोना वायरस के खतरे की सही पहचान और उसके विरुद्ध जारी 'युद्ध' की स्ट्रैटजी, विधि, तरीकों से जुड़े सवाल एवं उनकी सफलता-विफलता के सही आकलन के लिए 'पोलियो' वायरस और उसके उन्मूलन अभियान की महज पंद्रह-बीस साल पुरानी 'तस्वीर' को 'आईना' बनाना उपयोगी और जरूरी हो सकता है? उस दौरान केंद्र में अटल-सरकार थी और बिहार में लालू-राबड़ी सरकार।

पंद्रह-बीस बरस पहले देश के हिंदी मीडिया में 'वायरस' शब्द का धड़ल्ले से प्रयोग होने लगा था। क्योंकि उस वक्त गांव-देहात में 'पोलियो उन्मूलन' अभियान चल रहा था। गांव-देहात के लोगों को बताया जा रहा था कि पोलियो 'वायरस' मुख्यतः बच्चों पर हमला करने वाला खूंखार 'राक्षस' है। वह चोरी-छिपे बच्चों पर हमला करता है। बच्चों की जान लेता है। जान नहीं ले पाता, तो बच्चे को लुंज-पुंज कर देता है। बचपन को यूं लकवाग्रस्त करता है कि बाकी जीवन बेमानी लगे।

उस दौरान मीडिया में यह छपता था कि वैज्ञानिकों ने जान लिया है कि राक्षसरूपी पोलियो 'वायरस' कब, कहां और कैसे हमला करता है। यह राक्षस सूक्ष्म रूप धर कर बच्चे के मुंह से आंत और खून में समा जाता है। यह 21 दिन तक बच्चे के शरीर में जिन्दा रहता है। बच्चा कमजोर रहा, तो राक्षस अंदर से हमला कर देता है। बच्चा बीमार हो जाता है। बच्चा जितना कमजोर, राक्षस का हमला उतना ही तेज! बच्चा अपाहिज हो जाता है - जिन्दगी भर के लिए लूला-लंगड़ा बने रहने को अभिशप्त होता है - या फिर मौत के मुंह में समा जाता है। बच्चे में लड़ने की 'क्षमता' हो, तो वह बच जाता है। लेकिन राक्षस मरता नहीं। यह राक्षस बच्चे के शरीर के अंदर उत्पात मचाता हुआ बाहर निकलने का रास्ता ढूंढ लेता है। वह बच्चे के पैखाने से 'मल बीज' बनकर बाहर निकलता है।

भारत की पौराणिक कथा-कहानियों में 'रक्त बीज' राक्षस का रोमांचक वर्णन मिलता है। वह ऐसा राक्षस था, जो असहाय व भोले-भाले इन्सानों को मारता था। बल-बुद्धि से सम्पन्न देवताओं को भी नहीं छोड़ता था। राक्षस इतना ताकतवर नहीं था कि वह अजेय हो। वह हारता था, लेकिन

मरता नहीं था। वजह यह कि उसके खून का कतरा जमीन पर जहां पड़ता था, वहां उसका एक और प्रतिरूप पैदा हो जाता था। जितने कतरे जमीन पर पड़ते, उतने राक्षस! पौराणिक कथाओं के उस 'रक्त बीज' की तरह ही है पोलियो वायरस रूपी 'मलबीज' राक्षस, जो किसी भी बच्चे के शरीर में उत्पात मचाकर, जीतकर या हारकर पैखाना से बाहर निकलता है। वह मलबीज राक्षस बाहर आकर यूं तो सिर्फ 48 घंटे जिन्दा रहता है, लेकिन इस बीच वह सौ नहीं, बल्कि हजार सूक्ष्म राक्षसों के रूप धारण कर फिर से जिन्दा हो सकता है। सिर्फ एक बच्चे के पैखाने से निकला एक मल बीज रूपी राक्षस 48 घंटे में मरते-मरते एक सौ से एक हजार सूक्ष्म राक्षसों के रूप में जिन्दा हो जाता है। वह घनी आबादी वाले गांवों के गंदे मोहल्लों, गंदी बस्तियों और दूषित पानी पर जिन्दा परिवारों के बच्चों में प्रवेश कर जाता है। फिर उन बच्चों से पैदा होते हैं - हजारों-लाखों मल बीज राक्षस यानी खूंखार पोलियो वायरस!

बहरहाल, वर्ष 2002 में बिहार (सम्भवतः झारखंड भी) के पढ़े-लिखे लोगों से यह पूछा गया और पत्रकारों ने अपने-अपने राष्ट्रीय अखबारों में लिखा भी कि क्या पोलियो 'केस' का यह विकराल अर्थ जनता तक पहुंच पाया है? अगर हां, तो बिहार में पोलियो वायरस के खिलाफ 2001 में निर्णायक युद्ध होने के बाद भी इस साल 'सिर्फ' आठ केस पकड़ में आने का क्या अर्थ निकाला जाये? विश्व स्वास्थ्य संगठन, यूनिसेफ और सरकार की सफलता के दावों में छिपी विफलता? समाज और जनता की अधूरी समझ?

पोलियो के खिलाफ जारी निर्णायक व अंतिम युद्ध में शामिल् लोग, संगठन, समाज और राज्य सरकार ने 'सिर्फ' पर जोर देकर कहा – 'बिहार में सिर्फ आठ नये केस सामने आये हैं यानी हम सफलता की मंजिल के करीब है।' लेकिन क्या वे जन-जन तक यह संदेश पहुंचा पाये कि जनता की सीधी व पूरी भागीदारी के बिना सफलता की मंजिल करीब दिखेगी, लेकिन मिलेगी नहीं?

बिहार सरकार के अनुसार, वर्ष 2000 में बिहार में पोलियो के कुल 49 केस पकड़ में आये। 49 का मतलब सिर्फ 49 मरीज नहीं, बल्कि उनसे 49 हजार से भी ज्यादा बच्चों के शरीर में 'मलबीज' राक्षस के प्रवेश के खतरे की आशंका! खैर, बिहार सरकार समय पर चेती। आम बीमारियों के इलाज के मामले में बरसों से लकवाग्रस्त शासन-प्रशासन करोड़ों रुपये के विदेशी अनुदान से आयोजित 'पोलियो उन्मूलन' को 'उत्सव' के रूप में मनाने की योजना को अंजाम देने के लिए हाथ-पैर चलाने को तैयार हुआ। लेकिन इसके लिए वह अपने केंद्रीय राजनीतिक आकाओं के आदेश की प्रतीक्षा में महीनों बैठा रहा। तब अंतर्राष्ट्रीय संस्था यूनिसेफ एवं विशेषज्ञों ने पोलियो उन्मूलन अभियान के लिए 'राजनीतिक हस्तक्षेप' को जरूरी मानकर सत्ता-राजनीति के दरवाजे पर दस्तक दी। तब जाकर केंद्र सहित बिहार का प्रभुवर्ग जगा। उसने नारा दिया - 'दो बूंद दवा, पोलियो हवा।'

सत्ता-राजनीति के हस्तक्षेप की वजह से बिहार में भी पोलियो उन्मूलन का उत्सव धूमधाम से चला। इसका कुछ अच्छा नतीजा वर्ष 2001 के आंकड़ों में नजर आया। सरकारी आंकड़ों में बताया गया कि पोलियो के सिर्फ 27 नये केस पकड़ में आये। शासन-प्रशासन ने अपनी पीठ आप थपथपाकर खुशी जाहिर की कि यह पोलियो उन्मूलन अभियान को 'उत्सव' के रूप में मनाने का नतीजा है। (केंद्र सरकार ने भी अपने हिस्से के श्रेय के लिए इसी तरह के आंकड़े पेश किये।

लेकिन विश्व स्वास्थ्य संगठन एवं यूनिसेफ जैसी संस्थाओं ने केंद्र को आगाह किया कि बिहार जैसे पिछड़े राज्य में बारबार और हर बार उत्सव मनाना संभव नहीं। इसलिए 'उत्सव' को नियमित अभियान में बदला जाये। बाहर के 'पैसे' से दो-चार बार उत्सव मनाया जा सकता है, लेकिन पोलियो उन्मूलन तभी संभव है, जब समाज और सरकार 'अपनी पहल' पर उसे नियमित अभियान बनाये। उसने यह संदेश फैलाने की भी कोशिश की कि -'पोलियो का इलाज संभव नहीं है। लेकिन पोलियो की बीमारी होने और फ़ैलाने से बचाया जा सकता है।' यानी पोलियो

उन्मूलन के उत्सव को सिर्फ बीमारों का इलाज नहीं, बल्कि बीमारी के होने और फैलने से रोकने का सामूहिक 'प्रयास' और 'प्रेरणा' बनाया जाये।

लेकिन वर्ष 2001 में 'सिर्फ' 27 नये केस होने की सूचना को बिहार के लकवाग्रस्त शासन-प्रशासन ने भारत के महान लेकिन अपंग क्रिकेटर 'चंद्रशेखर' की 'गुगली' जैसी मारक 'बॉलिंग' का परिणाम बताकर यह जाहिर किया कि वह खुद उक्त संदेश को ग्रहण करने में अक्षम है। इससे शासन-प्रशासन की 'समझ' की पोल खोल दी। और सरकारी आंकड़ों में दर्ज एक सूचना 'लीक' कर गयी कि वस्तुतः बिहार में पिछले वर्ष पोलियो केस की संख्या बढ़कर 121 हो गयी थी। यानी बिहार के करोड़ों गरीब बच्चों (पांच साल से नीचे) पर हमला करने के लिए पोलियो का मलबीज राक्षस हजारों रूप में जिंदा हो गये थे!

बहरहाल, तब एक बार फिर अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएं सक्रिय हुईं। इसलिए देश के अन्य राज्यों के साथ बिहार सरकार भी फिर से जगी नजर आयी। उसने घोषणा की कि एक से 5 जून तक बिहार में पोलियो उन्मूलन का विशेष अभियान चलेगा। उसके लिए 30 हजार सरकारी और गैरसरकारी टीमें निकलेंगी। घर-घर जायेंगी और पांच साल की उम्र तक के तमाम बच्चों को 'दो-दो बूंद' दवा पिलायेंगी। उनमें 5000 टीमें जगह-जगह स्थिर कैंप लगायेंगी।

और झटपट प्रचार की राजनीतिक पॉलिसी के तहत बिहार के शहरों-कस्बों में 'एक स्वस्थ शहरी बच्चे को दवा पिलाती मुख्यमंत्री राबड़ी देवी' के पोस्टर भी नजर आने लगे। इस बाबत टीवी पर विभिन्न फिल्मों-धारावाहिकों के बीच 'छोटे से ब्रेक' में आनेवाले विज्ञापनों की भीड़ में सुपरस्टार अमिताभ बच्चन को खीजते हुए और नसीहत देते हुए देखा गया। लेकिन क्या इन पोस्टरों और विज्ञापनों ने पोलियो उन्मूलन को 'उत्सव' से 'अभियान' में बदलने की प्रेरणा दी? क्या इनसे जनता के बीच यह मैसेज पहुंचा कि अपने बच्चे को पोलियो से बचाने के लिए किसी माता-पिता का सर्वथा 'निजी' प्रयास हजारों बच्चों को बचा सकता है, लेकिन जब तक सभी प्रदेशों में पिछड़े समाजों के तमाम बच्चे सुरक्षित नहीं होंगे, तब तक अपने बच्चे को बचाने के किसी भी माता-पिता के निजी प्रयास की सफलता संदिग्ध होगी?

बिहार के लकवाग्रस्त प्रशासन ने तो यह बताने का साहस ही नहीं किया कि बिहार में तीन सालों में पोलियो से मरने या अपाहिज होनेवाले बच्चों की संख्या कितनी रही और कितने बच्चे सर्दी-खांसी-बुखार जैसी आम बीमारियों के कारण मौत के मुंह में समा गये? इसलिए किसी को यह समझ में नहीं आया कि पोलियो उन्मूलन के उत्सव के लिए बिहार में सामान्य बीमारियों से ग्रस्त कितने लाख बच्चों को जान की 'कीमत' चुकानी पड़ी? प्रशासन अपनी सफाई में विशेषज्ञों का यह विश्लेषण दोहराता रहा कि उत्तर प्रदेश से बीमारी का 'आयात' होने के कारण बिहार में पोलियो के केस में इजाफा हो रहा है।

वह सूचना सही थी, लेकिन बिहार के प्रशासन के लिए वह सिर्फ अपनी 'विफलता को छिपाने का तर्क' बनकर रह गयी! वह तर्क इस तथ्य की ओर संकेत कर गया कि बिहार का तंत्र 'उत्सव' मनाने को तैयार है, लेकिन उससे संभावित 'सुरक्षा-चक्र' को टूटने से बचाने में असमर्थ है! वह बीते सालों में बच्चों को आम बीमारियों से बचाने का 'सुरक्षा कवच' बनाने में विफल रहा, तो फिर पोलियो से बचाने के लिए बाहर के पैसे से बनने वाले सुरक्षा-चक्र को टूटने से भी कैसे बचा सकता था?

आज केंद्र में मजबूत मोदी-सरकार का एकछत्र साम्राज्य है और बिहार में भाजपा के 'सहारे' टिकी मजबूर नीतीश सरकार। कोरोना के खिलाफ इन सरकारों की वर्तमान युद्ध का नजारा 20 साल पहले के उक्त नजारे से कितना मिलता-जुलता है और किस मायने में अलग है – यह समझा जा सकता है! बशर्ते तब की स्वतंत्र मेन स्ट्रीम मीडिया आज के उस सुरक्षा-कवच से बाहर निकलने का साहस करे, जिसे आमतौर 'गोदी कवच' के रूप में पहचाना जाता है। ■

शोभा भाभी आप हमेशा यादों में जिंदा रहेंगी

'इक प्यार का नगमा है मौजों की रवानी है, जिन्दगी और कुछ भी नहीं तेरी मेरी कहानी है। कुछ खोकर पाना है कुछ पाकर खोना है। जीवन का मतलब तो आना और जाना है।' जब इस गीत को सुनती हूं तो लगता है कि गीतकार ने कितना सही लिखा है। प्रकृति का भी यही नियम है जो आता है उसे एक दिन जरुर जाना पड़ता है। लोग जब जन्म लेते हैं तो खुशियां आती है, परंतु ये जब हमें छोड़ चले जाते हैं तो ढेरों गम दे जाते हैं। और जब कोई अपना असमय ही हमसे जुदा हो जाता है तो मन काफी विचलित हो उठता है। उनके बारे लिखने के पहले हाथ कांपने लगता है। कलम चल नहीं पाती है। आज शोभा भाभी (शोभा टुडू) के बारे जब लिखना पड़ रहा है तब यह स्थिति मेरी भी है। कोरोना की दूसरी लहर ने उन्हें हमसे छीन लिया।

वे 'संवाद' की ट्रस्टी एवं बेथेसेदा शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय (बीएड कॉलेज) में प्राध्यापक थीं। 'संवाद' से जुड़ने के पहले से ही मेरा उनसे परिचय था। 'संवाद' से जुड़ने के बाद वह रिश्ता ज्यादा प्रगाढ़ हो गया। शोभा भाभी धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थीं। ईश्वर पर उनको अटूट विश्वास था। जब शिशिर दा गुजर गये तब भी यह कहकर अपने मन को विश्वास देती रही कि शायद प्रभु की यही इच्छा रही होगी। शिशिर दा के जाने के बाद उनका जीवन काफी एकाकी हो गया। जब भी बातचीत होती, किसी न किसी तरह उनका प्रसंग छिड़ ही जाता और बोलती देखिये ना आपका दादा हमें छोड़कर चले गये। इतना बड़ा घर, अकेले रहना अच्छा नहीं लगता है। फोन पर प्रायः उनसे बातचीत होती रहती थी। जब 'संवाद' की बैठकों में शामिल होने आतीं तब भी परिवार, खानपान इत्यादि के बारे हम बातचीत किया करती थीं। जब कभी 'संवाद' की बैठक में उनके आने पर मैं नहीं मिल पाती तो वह तुरंत घर पहुंच जाती अथवा बुलाने के लिए फोन करती - ''श्रावणी आइये''। बैठक के बाद हमारा गपशप चलता रहता। उनकी

मृत्यु के कुछ दिन पहले भी उनसे बातचीत हुई थी। पर हमें क्या पता यह हमारी अंतिम बातचीत होगी।

एक दिन अचानक घनश्याम दा का फोन आया कि शोभा जी नहीं रहीं, दयामनी ने फोन पर हमें इसकी सूचना दी है तुमलोग दूसरे से इस बात को कन्फर्म करो। फिर मैंने वंदना जी को फोन लगाया क्योंकि मुझे पता था कि उनकी बेटी के ससुराल पक्ष के कोई रिश्तेदार उनके घर के समीप रहते हैं उनसे बातचीत करने पर सारी बातें मालूम हुई कि वह कोरोना पॉजिटिव होकर मांडर अस्पताल में भर्ती थी। कल अचानक ऑक्सीजन लेबल गिर जाने पर उन्हें रांची लाया गया पर रांची में कोई भी अस्पताल में बेड नहीं मिला। अस्पतालों का चक्कर काटते-काटते ही उनकी मृत्यु हो गई। यह समाचार सुनकर तो लगा कि हे भगवान यह क्या हो रहा है यह कोरोना इतना कहर क्यों ढा रहा है? पर विधि के विधान को कौन टाल सकता है। अब वह हमारे बीच नहीं रहीं। उनकी यादों को संजो कर रखना ही उनके लिए हमारी श्रद्धांजलि होगी। 'संवाद' परिवार की तरफ से उन्हें अश्रुपूर्ण श्रद्धांजलि और कोटि-कोटि नमन!

- श्रावणी

एक जीवन्त और जुझारू महिला : कनक

कभी सोचा ही नहीं था कि कनक दी के लिए मुझे श्रद्धांजलि के दो शब्द ही सही, लिखने होंगे। कनक दी का जाना एक शॉक, एक धक्का के समान था। अचानक जैसे सब कुछ टूट गया हो। भरोसा नहीं हो रहा हो। हम सभी अचम्भे में आ गये। एक सवाल जो मन मस्तिष्क में लगातार गूंज रहा था कि, 'ये क्या हो गया'? विश्वास ही नहीं हुआ। लगा ये सब झूठ है।

2 मई की दोपहर को लगभग डेढ़ बजे के आस-पास, जब श्रीनिवास जी ने फोन पर लिखा, 'कनक थीं', तो पहले मैं समझ ही नहीं पाई, कि क्या बोला जा रहा है। बाद में जब समझ में आया, तो स्तब्ध रह गई। पूरी तरह से निःशब्द। दिमाग शून्य सा हो गया। कल्पना नहीं कर पा रही थी कि ये क्या हो गया। हम सभी उनके ठीक हो कर घर लौट आने के इंतजार में थे। कनक दी के लिए 'थी' शब्द स्वीकार्य नहीं लग रहा था। उनके बीमार पड़ने के समय से ही मै पूरी तरह जुड़ी हुई थी। हर पल की जानकारी थी मुझे, पर ये नहीं सोचा था कि वो हम सभी से इतनी दूर चली जाएंगी।

वो कोरोना से पीड़ित हो गयीं थीं और ऑक्सीजन की कमी होने के कारण अस्पताल में भर्ती होना पड़ा। लगभग दस दिनों तक अस्पताल में बीमारी से जूझने के बाद उनका निधन हो गया।

कनक दी का व्यक्तित्व बहुत शांत, गहरा और दृढ़ था। कोई भी उनके प्रति विश्वास महसूस कर सकता था। युवा आंदोलन से विकसित, वैचारिक स्पष्टता थी और जिससे उन्होनें कभी भी कोई समझौता नहीं किया। कॉलेज के प्रारंभिक दिनों में ही वे 1974 के बिहार छात्र आंदोलन से जुड़ गयी थीं। इमरजेन्सी के खौफ के दौर में भी वे सक्रिय रहीं। कनक 'छात्र युवा संघर्ष वाहिनी' बिहार की संयोजक भी थीं और इस तरह नेतृत्व संभाला कि बिहार में बड़ी संख्या में लड़कियां सामने आई। कितना कुछ किया

कनक दी ने। दंगा पीड़ितों का अध्ययन किया, राजनैतिक सुधारों के लिए प्रयास किया। कनक दी की पूरी जिन्दगी एक स्वतंत्र और निर्णायक स्त्री की जिन्दगी रही। अपनी समझ, अपनी ख्वाहिश और अपने मानवीय पैमाने पर अन्तर्मुखी जिद्द या दृढ़ता से अन्त तक जीती रहीं। सामान्य तौर पर वे अपनी सौम्य, मुस्काती-हँसती चुप्पी से अपनेपन का माहौल ही रचती रहीं। उनसे शिकायतें बहुतों को होंगी। चिढ़, गुस्सा या वैमनस्य शायद ही होगा।

कनक दी और श्रीनिवास जी बोधगया सघन क्षेत्र के पीपरघट्टी गाँव में एक झोपड़ी में अपनी बेटी रुनु को लेकर वर्षों रहे और बोधगया संघर्ष का हिस्सा बने। मैं उस दरम्यान अपने पी. एच. डी. के अध्ययन के लिय बोधगया गई थी। मुझे उनके छोटे से घरोंदे को देखने का मौका मिला था। छोटी सी रूनु और श्रीनिवास जी के साथ मिट्टी से बने जिस घर में, निश्चिंतता के साथ वो रह रही थीं, वो उनके क्रांतिकारी चरित्र को दर्शाता था।

बोधगया के ऐतिहासिक भूमि संघर्ष में बोधगया शंकराचार्य मठ के, अवैध कब्जे से मुक्त करवाये गए जमीन के भूमि-स्वामित्व के कागजात का पट्टा पहली बार बोधगया के कुछ गाँवों की स्त्रियों, गाँव की बेटियों के नाम भी हुआ था। यह स्त्रियों के नाम भूमि स्वामित्व लेने वाला इकलौता और पहला भूमि संघर्ष बना। और कनक जी उस संघर्ष की पहली पाँत की महिला नेता रहीं।

बाद में वो राँची आ गई थी और यहाँ रहते हुए एक व्यापक महिला संगठन की धुरी में रहीं। सारे राष्ट्रीय महिला सम्मेलनों की सहभागी रहीं। पहले सामूहिक संपादन में 'नारी संवाद' और बाद में 'संभवा इंजोर' पत्रिका निकाला। कनक हमेशा से वाहिनी मित्र मिलन आयोजन की प्रेरक धुरी और सशक्त स्तंभ रहीं थीं।

स्वतंत्र स्त्री संगठन का रूझान उनमें रहा। निष्पक्ष रहने की चाह उनमें सदा रही। बोधगया से वापसी के बाद वे किसी भी संगठन से औपचारिक रूप से नहीं जुड़ीं। दिखने की, नाम की आकांक्षा से मुक्त कनक एक अनौपचारिक सामूहिकता में सदा ही सक्रिय रहीं।

याद करती हूं तो याद नहीं आता, कि हम पहली बार कब मिले थे। आज ऐसा महसूस हो रहा है, मानो हम दोनों, हमेशा से साथ थे। याद आता है मुझे कॉलेज के वो दिन जब कनक दी ने मुझे एक टास्क की तरह ले लिया था और संवारने में जुट गई थीं। मैं एक कोरा स्लेट थी और उस पर अपने सधे हाथो से, दृढ़ विचारों से, मेरे विचारों को, व्यक्तित्व को, गढ़ने में एक परिपक्व कारीगर की तरह जुट गई थीं। कनक दी, मुझे महिलाओं के साथ होने वाले गैरबराबरी के व्यवहार, अत्याचार, दोहरे मापदंड, विश्व के क्रांतिकारी आंदोलनों से संबन्धित छोटी छोटी किताबे पढ़ने के लिए दिया करती थीं। मुझे उन्होंने प्रेरणादायी फिल्मों के द्वारा भी तराशने की कोशिश की और बूटपोलिश, जागते रहो, जैसी ना जाने कितनी फिल्मों को दिखाया। वो सिर्फ नारीवादी आन्दोलनकर्ता नहीं थीं, बल्कि सामाजिक क्रांति के हरेक काम में लगी रहती थीं। आज अगर कोई कहे कि मेरे ऊपर उनका बहुत प्रभाव है तो मुझे अच्छा लगता है। इनके व्यक्तित्व से मैं कुछ इस तरह प्रभावित थी कि कई बार कितने कार्यक्रमों में शामिल होने, मैं केवल इसलिए जाती थी कि वो वहां होंगी। इनके साथ की चाहत मुझे इनके करीब लाई और मैं बहुत कुछ सीख पाई। लेकिन मैं उनकी तरह जुझारू नहीं बन पाई।

पटना में धरने, प्रदर्शन पर जाने पर कई बार मेरे घर से लौटने के लिए केवल इसलिए पैसे नहीं दिए जाते थे,

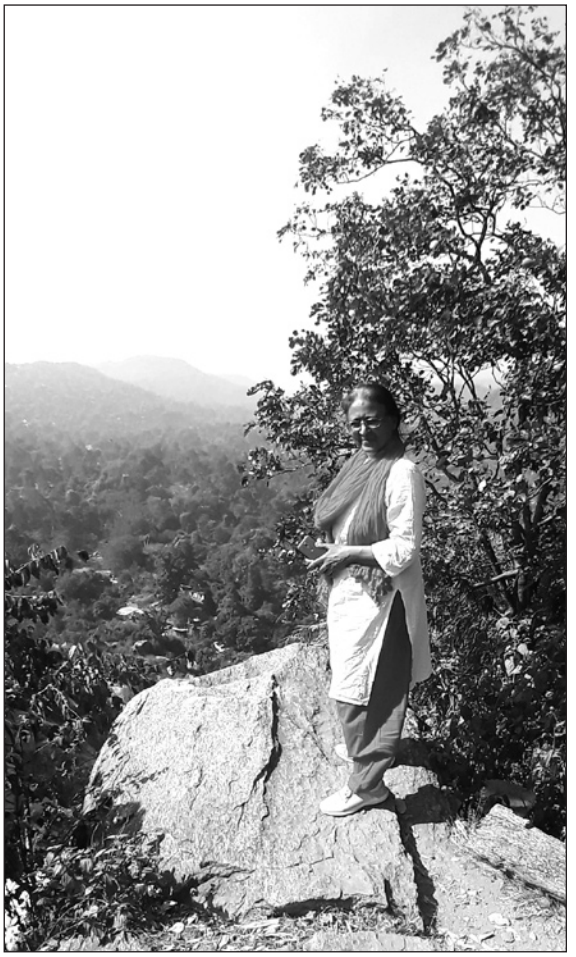

ताकि मैं वाहिनी के कार्यक्रमों में भाग न ले सकूँ। वैसे में कार्यक्रम स्थल से मेरे घर लौटने की जिम्मेवारी कनक दी जरूर निभाती थीं।

जलगांव के चिनावल में वाहिनी के राष्ट्रीय महिला शिविर के समय हम साथ हुए थे। उस समय मैं महिलाओं को मजाक उड़ाने वाले चुटकुले सुनाया करती थी। उन्होंने तब मुझे बहाने से और सिद्धांत के साथ भी बताया कि कैसे ये महिलाओं को छोटा बनाने के लिये किया जाता है। और इस तरह छोटी छोटी बहसों के माध्यम से भी मेरे विचारों को निखारने की कोशिश उन्होंने की। उम्र में थोड़ी बड़ी होते हुए भी, उन दिनों वो मुझसे एक छोटी लड़की की तरह व्यवहार किया करती थीं, एक गार्जियन की तरह, मुझे अपने साथ लगाए रखना ताकि मैं बहकूं नहीं और कुछ

सिखती भी रहूं। जब मुझे अजंता की गुफाओं को दिखाने ले गईं एक पल को नहीं छोड़ा था।

मुझे याद है कि 1984 में कोटपुटली (राजस्थान) में एक बलात्कार की घटना हुई थी। उसे विषय बनाते हुए, उस घटना को केंद्र में रख कर वाहिनी की तरफ से एक बड़ा कार्यक्रम लिया गया था। कोटपुतली से दिल्ली पदयात्रा का, जिसका उद्देश्य स्त्रियों पर होने वाले अत्याचार के खिलाफ एक वातावरण बनाना था। उस पदयात्रा में बड़ी संख्या में बोधगया आंदोलन से जुड़ी महिलाओं ने भी भाग लिया था। पदयात्रा की समाप्ती पर दिल्ली में एक प्रेस कॉन्फ्रेंस हुई थी, जिसमें कनक दी ने जिस स्पष्टता से अपनी बात रखीं, वह मुझे आज भी अच्छी तरह याद है। कभी भी मुद्दे से हट कर अपनी बात नहीं रखती थी। पदयात्रा के समय हर पड़ाव पर होने वाले कार्यक्रमों में, मैं विषय पर ठीक से बात नहीं रख पाती थी। रात में जब हम सभी बैठते थे तो कनक दी, अकेले में मुझे बताती थी कि कैसे बोलना चाहिए ताकि स्पष्टता से अपनी बात रख सकूं। मुझे ये स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं है कि उस समय, मैं अच्छे से अपनी बात नहीं रख पाती थी। बोलते बोलते उत्तेजना में आ जाती थी। चेहरा गुस्से से लाल होने लगता था। उन्होंने बड़े ही संयत तरीके से मुझे समझाया कि इस तरह तो मैं अपनी बात संप्रेषित नहीं कर पाऊंगी, और जो कुछ कहना चाहती हूँ वो मेरे गुस्से में दब कर रह जाएगा और ये सच है कि धीरे धीरे उन्होंने मुझे अभिव्यक्ति की कला सिखा दी। एक अनोखा ही व्यक्तित्व था उनका।

बाद में वह रांची आ गई थीं और मुझे भी, मेरी कोल इंडिया की नौकरी में, स्थापना रांची में ही मिली। कनक दी प्रखंड (block) स्तर की सरकारी नौकरी में लेडीज एक्सटेंशन ऑफिसर थीं। तब से हमारा हर पल का साथ शुरु हुआ था। हर जगह साथ जाना और पास पास बैठना।

1994 से हमलोगों ने मिल कर, महिलाओं की एक पत्रिका, 'संभवा इंजोर - महिलाओं का वैचारिक हस्तक्षेप', निकालना शुरु किया था। मैं उसमें लगातार लिखती थी और एक कार्यकर्त्ता की तरह लगी रहती थी, जैसे लेखकों के पास से लेख लाना, प्रूफ रीडिंग, छपने के लिए देना, छपकर आने पर बांटना। लेकिन बड़े और महत्त्वपूर्ण काम कनक दी किया करती थीं, जैसे – बड़े लेख लिखना, दूसरों के लेखों को टाइप करना, उसकी एडिटिंग करना, छप कर आने पर उसकी प्रूफ रीडिंग करना। उन्होंने पेज मेकिंग करना भी सीख लिया था। लगभग सारा काम, वह खुद किया करती थीं, और मैं एक कार्यकर्त्ता बन सदा उनके साथ रहा करती थी।

कनक दी के साथ की इतनी यादें हैं कि कितना कुछ लिखा जा सकता है। उनके जाने के बाद ऐसा महसूस होता है मानो जीवन का एक कोना खाली हो गया हो, जो शायद ही अब कभी भरे। अब उनकी यादें ही रह गई केवल। मुझे लगता है मैंने अपना बहुत कुछ खो दिया। एक अंतरंग मित्र, सलाहकार, बड़ी बहन, मातृ तुल्य दोस्त, प्रियजन और न जाने क्या क्या।

कनक दी हमारे बीच की एक बेहद जरूरी व्यक्तित्व थीं एक ऐसी शख्स थीं जो सामाजिक परिवर्तन की बड़ी और जरूरी भूमिका निभा सकती थीं। एक जीवन्त और जुझारू महिला नेतृत्वकर्ता का इस तरह चला जाना खल गया। उनके निधन से संपूर्ण क्रांति अभियान को एक धक्का लगा है।

- किरण

बेलो उर्फ शुकुरमोनी सरदार

शुकुरमोनी जिसे हम सब बेलो कहकर बुलाते थे आज हमारे बीच नहीं है। 3 मई 2021 को बीमारी के कारण उनका निधन हो गया। आज जब वो हमारे बीच नहीं है तब उनके जिंदगी के कुछ अनजाने पहलूओं से सबको अवगत कराना चाहूंगा। उसका जन्म पोटका प्रखंड के बड़ा सिगदी गांव में 10 जून 1957 को हुआ था। बेलो की एक बड़ी बहन थी जब वह दूसरी बेटी के रुप में पैदा हुई तो किसी को खुशी नहीं हुई। बेलो का बचपन काफी संघर्षमय रहा। उस समय बड़ा सिगदी गांव में कोई प्राथमिक स्कूल नहीं था। बेलो के पिताजी बीरबल सरदार ने सार्वजनिक जमीन तलाश कर किसी तरह अपने अथक प्रयास से कच्चा ही सही पर एक विद्यालय की नींव रखी। विद्यालय चलने लगा। उसके पिताजी ने दोनों बहनों का नामांकन स्कूल में करवा दिया। दूसरे बच्चों को पिटता देख उसके मन में भय हो गया और वह स्कूल नहीं जाने की बहाना करने लगी। बाद में पिताजी की डांट के फलस्वरुप स्कूल जाने लगी और प्राथमिक शिक्षा किसी तरह पूरी की।

किशोरी अवस्था से ही साफ सफाई एवं दीवारों पर कलात्मक चित्रण करने की कला उसमें विकसित होने लगी थी। बाद में सामाजिक आंदोलन में भी उसकी रुचि जगने लगी। 1977-78 में पोटका क्षेत्र में सुखाड़ पड़ा। सुखाड़ से निपटने के लिए किसान संघर्ष समिति का गठन हुआ। उसी समय छात्र युवा संघर्ष वाहिनी भी पोटका क्षेत्र में सघन रुप से काम करने लगी। बेलो मजदूर किसान संघर्ष समिति का सक्रिय सदस्य बनी। 1978 में हाता से जादूगोड़ा तक जब PWD के द्वारा सड़क निर्माण किया जा रहा था, बेलो उसमें मजदूरी करने लगी। छात्र युवा संघर्ष वाहिनी और मजदूर किसान समिति के विचारों से प्रेरित होकर उसने न्यूनतम मजदूरी एवं महिला पुरुष की समान मजदूरी की मांग उठाई। 1977-78 में सुखाड़ पड़ने पर मजदूर किसान समिति के बैनर तले सुखाड़ राहत कार्य के

लिए पदयात्रा का आयोजन किया गया। स्वयं तो पदयात्रा में भाग लिया ही अन्य महिलाओं को भी प्रेरित कर प्रखंड कार्यालय तक लाई। आंदोलन के फलस्वरुप सुखाड़ राहत कार्य की घोषणा हुई। 1979-80 में भी भयंकर अकाल पड़ा। बेलो गांव-गांव जाकर लोगों को प्रेरित करती रही। लोगों का नारा था -'सन उनासी के तूफान, जागो हो मजदूर किसान'। यह नारा लोगों में जोश भर देता था। छात्र युवा संघर्ष वाहिनी के प्रयास से राहत कार्य चलाया गया। लोगों को काम मिले इसके लिए बेलो हमेशा प्रयास रहती। 1989 में पीने की पानी की समस्या को लेकर भी बेलो ने महिलाओं को संगठित कर आंदोलन की थी। 10-12 गांव से लगभग 400 की संख्या में महिलायें गगरा में चुआ का गंदा पानी भरकर रैली करते हुए पोटका प्रखंड कार्यालय का घेराव किया। महिलाओं ने नारा दिया 'गॉये गॉये हाहाकार, बी.डी. ओर घोरेर जलेर धार'। उसके बाद

से गांव में चापाकल लगा, कुंआ बना, यह उनके संघर्ष का ही परिणाम था। ईंचा खड़कई बांध विरोधी संघर्ष में भी वह 1988-1991 तक हर रैली, धरना में सक्रिय रुप से भाग ली। बिहार सरकार ने जब प्रेस की संप्रभुता को खत्म करने के लिए प्रेस बिल लाया तो इस प्रेस बिल के खिलाफ रैली में शामिल होने के लिए वह पटना भी गयी। पुलिस ने प्रदर्शनकारियों पर आंसू गैस छोड़े और उन्हें दौड़ा-दौड़ा कर पीटा फिर भी वह डरी नहीं, बल्कि और दुगुने जोश के साथ आंदोलन में हिस्सा लेती रही। जंगल कटाई रोकने के लिए 'जंगल बचाओ समिति' का गठन किया। गांव-गांव से महिलाओं को संगठित कर सांस्कृतिक टीम का गठन किया। 1993 में जब टोंटो में दक्षिण एशिया आदिवासी सम्मेलन का आयोजन हुआ तो वह अपनी सांस्कृतिक टीम के साथ इसमें हिस्सा लिया। संगठन के साथ-साथ संस्था के कार्यों में भी वह बढ़ चढ़ कर हिस्सा लेती थी। उनके प्रयास से गांव-गांव में महिला समूह का गठन हुआ। ग्राम सभा की बैठकों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने का श्रेय भी उन्हें जाता है। महिलाओं की खामोशी तोड़ने का कार्य बेलो ने बखूबी किया। उसके प्रयास के कारण महिलायें ग्राम सभा बैठकों में भाग लेकर अपनी बातों को बेहिचक रखने लगी। आज वह हमारे बीच नहीं है, पर उनके द्वारा किये आंदोलन और कार्यों की बदौलत वह हमारे बीच हरदम जिन्दा रहेगी।

- सिद्धेश्वर

मुझे 'बोहु' बोलने वाली खामोश हो गई

इस दुनिया में लोगों का आना जाना लगा रहता है। क्योंकि प्रकृति का नियम है कि कोई भी चीज हमेशा के लिए नहीं रहती है। मनुष्य का भी वही है। मनुष्य अगर इस संसार में आता है तो एक दिन जाना भी तय है। यही संसार का सत्य है। पर इस जन्म लेने और मरने तक में कई व्यक्ति ऐसे होते हैं जो अपने कर्मों से हमारे बीच कुछ यादें छोड़ जाते हैं। वैसे ही थी 'बेलो'।

बेलो से मेरी मुलाकात 1984 में उसके घर में हुई थी। जब शादी के बाद मार्डी जी ने मुझे पहली बार उनके घर बड़ा सिगदी ले गये थे। मेरा स्वागत बेलो के घर में एक नई दुल्हन की तरह हुई थी। बेलो के घर में उस समय उनके माता-पिता, दो भाई और तीन बहनें थी। बेलो अपनी भाई बहनों में दूसरी संतान थी। बड़ी बहन की शादी हो चुकी थी। भाई में दिलीप और जयपाल। बहनों में मालती, मेनका और सिमोती। उस मुलाकात के बाद मैं भी अपनी पढ़ाई और घर गृहस्थी संभालने में लग गई जिससे बड़ा सिगदी आना-जाना बहुत कम ही होता था।

1996-97 के दशक में मैं सामाजिक काम से जुड़ी तब से बेलो को मैं नजदीक से जानने लगी। बेलो मुझे बोहु (बंगला शब्द) कहकर ही बुलाती थी। वैसे बेलो पढ़ी लिखी नहीं थी पर अनुभव और ज्ञान उसमें ज्यादा था। जब महिलाओं को आगे लाने की बात आई तब बेलो और मैं गांव-गांव में पैदल ही महिलाओं से मिलने जाते थे। स्वयं सहायता समूह बनाने से लेकर जल, जंगल, जमीन बचाने के आंदोलनों में बेलो हमेशा आगे रहती थी। बेलो बोलने में पीछे पर काम में हमेशा आगे रहती थी। मुझे याद है जब स्वयं सहायता समूह के बैठकों में जाते थे तब बेलो के साथ 7-9 किलोमीटर रास्ता हम दोनों पैदल चलकर बातें करते हुए तय करते थे। बेलो का स्वाभाव बहुत शांत किस्म का था। बोलती बहुत कम थी। पढ़ी-लिखी नहीं होने से वह अपने को हीन सा महसूस करती थी। उसको लगता पढ़े-लिखे लोगों के बीच वह क्या बोलेगी। पर जब हम गांव में महिलाओं के बीच जाते उनके बीच वह एक उत्प्रेरक के रुप में नजर आती थी। मैं हमेशा उसे कहा करती थी 'नहीं पढ़ी हो तो क्या हुआ। अक्षर ज्ञान नहीं है पर ज्ञान तो तुम्हारे पास बहुत है। देखो तुम्हारे बातों से लोग कैसे प्रेरित होते हैं।' बेलो के साथ हमने पूर्वी सिंहभूम, पश्चिमी सिंहभूम एवं सरायकेला जिले में ग्राम सभा सशक्तिकरण का काम किया। जिसके कारण संस्था एवं संगठन के बीच बेलो की अलग पहचान बनी।

बेलो के घर में मेरे खाने पीने से लेकर बीमारी में सेवा तक मुझे मिला है। बेलो के परिवार का प्रत्येक सदस्य मेरा

हर प्रकार से ध्यान रखा है। बेलो जब भी ब्लाउज बनवाती तो हमसे बनवाती। उनको दूसरे से बनवाना अच्छा नहीं लगता था। अप्रैल 2021 को जब मैं बेलो के घर उससे मिलने गई थी तो उन्होंने दो ब्जाउज सीने के लिए बोली थी। जिसे मैं पूरा नहीं कर सकी। मुझे क्या पता था कि 3 मई 2021 को हमेशा-हमेशा के लिए इस दुनिया से चली जाएगी। अब तो बेलो के साथ बिताए गए आंदोलन के पल, महिलाओं के बीच पैदल जाने के पल और मुस्कुराते हुए बोहु-बोहु बुलाने वाली बेलो की यादें ही रह गई हैं।

- सालगे मार्डी

बेलो भी चली गयी

सिगदी की बेलो भी चली गयी। आज सिद्धेश्वर जी के फेसबुक वॉल से पता चला। फिर कुमार चंद्र मार्डी जी से बात कर कनफर्म किया। वही बेलो तो जिसे मैंने आदिवासी समाज के बीच काम की शुरुआती दिनों में जाना था? पता चला, हां, वही बेलो। एक डेढ़ वर्ष पहले मैं बड़ा सिगदी, पोटका गया था। उस वक्त उससे मिला था। जब भी उस तरफ जाता हूं तो उससे मिलता रहा हूं। इधर कुछ दिनों से उधर जाना नहीं हो रहा है।

कौन थी बेलो? क्या अहमियत था उसका मेरे जीवन में? सिद्धेश्वर जी ने जो तस्वीर लगायी है, उसमें बेलो रुग्ण दिख रही है। लेकिन महज डेढ़ दो वर्ष पहले बेलो वैसी नहीं थी। वह समय के साथ बदली तो थी, लेकिन उसके होठों की मुसकान वैसी ही थी जैसा मैंने सन् 78 में देखा था, जब वह किशोरी थी।

दरअसल, 1978 में जब मैं पोटका में वाहिनी धारा के सामाजिक कार्यकर्ता की हैसियत से काम करना शुरु किया था, तब ग्रामीण इलाकों में हमारे दो ही प्रमुख ठिकाने थे। एक तो मार्डी जी का घर और दूसरा बड़ा सिगदी में बेलो का घर। बेलो दिलीप की बहन थी। मालती सहित उसकी कई और भाई, बहने भी थी। सब उस समय किशोरावस्था में थे। बेलो, मालती और कई अन्य।

दिलीप वाहिनी में शामिल हुए और फिर जब हम लोगों ने मजदूर किसान समिति के बैनर से उस इलाके में काम करना शुरु किया तो दिलीप ने सड़क से लगा सामने वाला कमरा हमें कार्यालय के लिए दे दिया। मुफ्त, जिसमें हम और अन्य साथियों का सोना बैठना होता था। उस घर के सामने चट्टानों पर बैठ कर न जाने कितनी बैठकें हमने की। शेषा जी भी कभी-कभार वहां आया करती थीं। मैं उनसे जिद करता कि आप भी बेलो, मालती और गांव की अन्य औरतों की तरह नदी से पानी घड़े में लायें और एकाध बार उन्होंने मेरी जिद पूरी भी की।

बेलो उस वक्त हमारी बैठकों में शामिल तो होती थी, लेकिन कुछ बोलती नहीं थी। हां, हम जब ग्रामीण इलाकों में घूम कर वापस आते और भूख से व्याकुल रहते तो घर में जो कुछ भी खाने को उपलब्ध रहता, वह हमें ला कर देती। और यह सिलसिला दो तीन वर्षों तक चला।

लेकिन जीवन की परिस्थितियां बदली और एक बार फिर करीबन आठ वर्ष बाद मैंने रांची विवि के हिंदी विभाग में दाखिला ले लिया और पढ़ाई पूरी करने के बाद पत्रकारिता में चला आया। हांलांकि मेरे बाद भी मंथन, अरबिंद और अन्य साथी उस इलाके में आना जाना करते रहे।

पत्रकारिता में आने के बाद सक्रिय सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में काम करना नहीं के बराबर रहा, लेकिन पोटका से मेरा आत्मीय रिश्ता बना रहा। जब भी मौका मिलता है, मैं वहां जाता हूं और चूंकि बड़ा सिगदी ठीक सड़क पर पड़ता है तो वहां रुकता हूं। समय के साथ उस समय निकले कई साथी, जिसमें सिद्धेश्वर, विभीषण, हरीश, जीरन, फूलमणि, शांति आदि शामिल हैं, एनजीओ से जुड़ कर काम करने लगे। बेलो भी परिपक्व हुई और मालती के साथ एनजीओ से जुड़ गयी।

मार्डी का विवाह सालगे से होने के बाद सालगे भी काम करने लगी। यानि, सामाजिक बदलाव का सपना देखने वाली जो पहली पौध वहां निकली, वह एनजीओ सेक्टर में चली गयी। लेकिन उन्हें क्यों दोष दूं। मैं खुद भी तो पत्रकारिता में चला आया। हां, मैंने 'समर शेष है' उपन्यास लिखा तो इन सबों को उसका किरदार बना कर संजो लिया।

- विनोद कुमार

नहीं रहीं सामाजिक कार्यकर्त्ता और कवयित्री रेणु प्रकाश

(जनवादी महिला समिति की प्रदेश कोषाध्यक्ष और सामाजिक कार्यकर्ता कवयित्री रेणु प्रकाश का निधन 29 अप्रैल 2021 को रांची में हो गया। वे जनवादी लेखक संघ की राज्य कार्यकारिणी सदस्य थीं। रेणु प्रकाश सामाजिक जन आंदोलनों और साहित्यिक गतिविधियों में काफी सक्रिय थीं। वे मिलनसार, हंसमुख और पार्टी के प्रति समर्पित कार्यकर्त्ता थीं। वे समकालीन महिला साहित्यकार और एक मार्क्सवादी नारी चिंतक थीं। राज्य की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक समकालीन परिस्थितियों को उनकी रचनाओं में जगह मिलता था। जल, जंगल, जमीन और समाज में व्याप्त अंधविश्वास, रुढ़िवादी परंपरा, डायन-प्रथा और महिला उत्पीड़न उनकी साहित्य सृजन का आधार रहा।)

आज सुबह ज्योंही अपना फेसबुक वाल खोला तो देखा कि रेणु प्रकाश नहीं रही। मेरा सीधा कोई परिचय नहीं था। हां! कामरेड प्रकाश विप्लवी से परिचय बहुत पुराना है। प्रकाश जी हमलोगों के प्रिय हैं। जब पटना में रहते थे तो बराबर मुलाकात होती रहती थी। जब बिहार और झारखंड का बंटवारा हो गया तो उन्हें झारखंड की जिम्मेवारी मिली। ये लोग मधुपुर के रहनेवाले हैं। इस वजह से पार्टी ने फैसला लिया कि रांची में रहकर पार्टी को मजबूत करें। रेणु प्रकाश की कविता फेसवुक वाल पर कभी कभी देखता था। लेकिन मुझे यह नहीं मालूम था वह प्रकाश जी की पत्नी हैं। आज एक बार फिर से उनकी कविताओं को देखने लगा। सचमुच किसी की कीर्ति उसके जाने के बाद पता चलता है। आज मैं भी ऐसा ही महसूस कर रहा हूं। रेणु प्रकाश सिर्फ साहित्यिक ही नहीं बल्कि वो एक सक्रिय समाजकर्मी भी थीं। उन्होंने औरतों को संगठित करने का काम किया। ऐसे कवि विरले मिलते हैं जो जनता के मुद्दे को लेकर लड़ते हुए रचना कर्म करते हैं। इतिहास गवाह है कि ऐसे कवि/कवयित्री ही जनकवि के रूप में जाने जाते हैं। उनकी कविताओं में जो गहराई और आक्रोश है वह अद्भुत है। लेकिन प्रकृति की क्रूर पंजों ने हमारे बीच से एक उदीयमान सितारा छीन लिया। मौत तो अंतिम सत्य है इसे टाला नहीं जा सकता है।

रेणु प्रकाश एक गहरी मानवीय संवेदना वाली कवि थीं। चूंकि वह महिला मोर्चा की सक्रिय कार्यकर्ता थी इसलिए उनकी कविताओं में नारी स्वतंत्रता और अधिकार की झलक

ज्यादा दिखाई पड़ती है। इसीलिए वह अपनी एक कविता 'होस्टल की लड़कियां' में लिखती हैं-

झुंड की झुंड रंग बिरंगी
तितलियों की तरह
लुभाने के लिए
नहीं निकली हैं ये
अपने अपने घरों से
निकल पड़ी हैं ये अपने घरौंदे से
अपना वजूद तलाशने

इसी कविता में वह अन्त में इन लड़कियों के बारे में कहती हैं-

पक्के इरादे की
ठोस बुनियाद हैं
होस्टल की लड़कियां।

एक अन्य कविता 'एक अच्छी लड़की' में वह समाज

के ठेकेदारों को कहती हैं कि तुमने जो अच्छी लड़की के पैमाने बनाए हैं, मैं उसे तोड़ती हूं। वह कहती हैं-

हंसने पर पाबंदी थी
मैंने ठहाके लगाए।
बोलने की मनाही थी,
मैंने गप्पों से गुलजार किया।
यहां वहां जाना,
इनसे, उनसे मिलना
सब वर्जित था मेरे लिए।

अन्त में वह पूरे आक्रोश में कहती हैं-

ये मेरी जिन्दगी,
जीऊंगी अपनी मर्जी,
बाकि तो,
अपनी, आप जानो।

रेणु प्रकाश अपनी कविताओं में शोषण से जुड़ी हर छोटी बातों को प्रकाश में लाती रहीं। ऐसी ही एक कविता है 'बचपन दे दो'। वह लिखती हैं -

'टूटे प्लास्टिक बदल लो
नये कांच का बर्तन ले लो'
कई बार यह आवाज
टकराती है मेरे कानों से।
मेरी तल्लीनता भंग होती है.....
'भूख, गरीबी, बेकसी ले लो
मुझको मेरा बचपन दे दो
मुझको मेरा बचपन दे दो।'

सचमुच रेणु प्रकाश की कविता अत्यन्त संवेदनशील है। जब 14 अप्रैल को मुंबई में भूखे गरीब मजदूरों पर पुलिस ने डंडा बरसाया गया वह अपनी कविता 'चप्पलें' में इस पूरी घटना को इन शब्दों में व्यक्त करती हैं-

ये सिर्फ चप्पलें नहीं हैं
दोस्तों
भटकते, भूखे, परेशान,
वंचितों के पदचिन्ह हैं।
जरा गौर से देखो
ये क्या
इंसानियत के मुख पर
बदनुमा दाग नहीं।

कविता का अन्त वह इन मार्मिक पंक्तियों से करती हैं-

'कैसे कोई दफन
कर सकता है इन्हें
गर ये ना रहे
हम कहां होंगे
कभी सोचा है।'

जिस साहित्य का सरोकार जनता से होता है, वैसा साहित्य कभी मर नहीं सकता और ऐसे कवि या कवयित्री कभी नहीं मरते। शायद इसीलिये वह कहती हैं-

कितनी बार जलाओगे
मुझे
फिनिक्स हूं
बार बार जी उठूंगी
अपने ही राख से
यही तो मेरी जीजीविषा है...जिद है
धुन है
जिऊंगी, जिऊंगी, जिऊंगी
तुम क्या खाक मुझे मारोगे...

सचमुच रेणु प्रकाश आप कभी मर नहीं सकती। लोग आपको आपकी जनपक्षीय रचना एवं सशक्त कार्यकर्त्ता के रूप में याद रखेंगे। अन्त में मैं कामरेड रेणु प्रकाश को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं और कामरेड प्रकाश विप्लवी और उनके पुत्र को इस दुख की घड़ी में लड़ने की साहस दे। अन्त में रेणु प्रकाश की ही पंक्तियां-

उसने भी चाही होगी
एक अच्छी सी जिंदगी,
उसने भी चाही होगी
एक उड़ान।
जिंदगी गई, उड़ान से पहले
मौत को भी दर्द हुआ होगा
उसे ले जाने से पहले।

- सुनील सिंह

बहुगुणी सुंदरलाल बहुगुणा

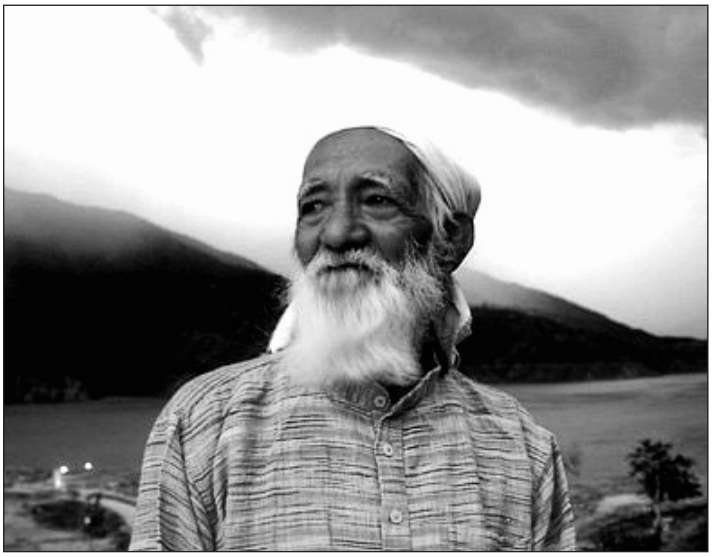

बात उन दिनों की है जब हम सब जवान थे और सुंदरलाल बहुगुणा प्रौढ़। सन् 84 की बात है। जेपी आंदोलन का दशक पूरा होने को था। हम मधुपुर के साथियों को (ग्रामीण साथियों सहित) 'चेचाली' जंगल बचाने की लड़ाई में सफलता मिली थी। 25-26 जनवरी को मधुपुर के जीतपुर-चेचाली में बिर मेला (जंगल-मेला) लगाने का निर्णय लिया। 'छात्र युवा संघर्ष वाहिनी' और 'मजदूर किसान समिति' इस मेले का संयुक्त आयोजक था। इस मेले में किन-किन महानुभावों को आमंत्रित किया जाए - यह प्रश्न था। चूंकि 'फौजी' विनय चाचा (विनय सिंह) बहुगुणा जी से बहुत प्रभावित थे, इसलिए उनका सुझाव था कि 'चिपको आंदोलन' के प्रणेता सुंदरलाल बहुगुणा को बुलाया जाना चाहिए। उनका नाम तय होते ही उनसे संपर्क किया गया। उन्होंने हमारे अनुरोध को सहर्ष स्वीकार किया।

उनकी स्वीकृति मिलते ही हम सब खुशी से झूम उठे। मेले की तैयारी जोर-शोर से होने लगी। मेले के इस आयोजन को इतिहास की कड़ी के रूप स्थापित करने के लिए कई महत्वपूर्ण निर्णय लिए गए। पहला, यह तय हुआ कि चेचाली के बीच जंगल में उस स्थान पर क्रांति ध्वज फहराया जाएगा जहां से जंगल के ठेकेदार को भगाया गया था। इस झंडे को फहराने के लिए 25 जनवरी की तिथि तय की गई। सफेद झंडे में चिपको आंदोलन का प्रतीक 'पेड़ से लिपटी महिला और पुरुष की तस्वीर' बनायी गयी। दूसरा, चेचाली के उसी ध्वज-स्थल के करीब अवस्थित जंगल-गांव जीतपुर के मैदान में मेला चलेगा, जिसमें 26 जनवरी को गणतंत्र दिवस के उपलक्ष में 'राष्ट्रीय तिरंगा' फहराया जाएगा।

बहुगुणा जी 24 जनवरी 1984 को मधुपुर पधारे। उन्हें अरविंद जी के यहां ठहराया गया। बहुगुणा जी ने आते ही मुस्कुराते हुए कहा – 'मैं तो अन्न ग्रहण नहीं करता। हां, अगर दिक्कत नहीं हो, तो साबूदाना खा लूंगा। इसके अलावे जो भी स्थानीय फल हो, खा सकता हूं।' हमारे साथियों को बहुत आश्चर्य हुआ कि वे अन्न नहीं खाते। लेकिन यही सच था।

दूसरे दिन जब सभी समय से उठने की तैयारी कर रहे थे, वे स्नान-ध्यान से निवृत्त हो चुके थे। पूस की ठिठुरन भरी सुबह तड़के वे अरविंद जी के साथ जीतपुर पहुंच गए। जंगल के बीच बसे जीतपुर में उनका भव्य स्वागत हुआ। खादी का सफेद साफा माथे पर बांधे और सफेद पाजामा-कुर्ता पहने वे बीच जंगल में दिव्य-पुरुष-सा लग रहे थे। चेहरे पर निश्छल मुस्कान उनकी दिव्यता द्विगुणित कर रही थी। चेचाली मोड़ पर पहला क्रांति-ध्वज उन्होंने फहराया।

बीच जंगल में नारे गूंज उठे -

क्या हैं जंगल के उपकार,
मिट्टी, पानी और बयार!
मिट्टी, पानी और बयार
ये हैं जीवन के आधार!!

क्रांति-स्थल पर ही क्रांति कलेवा बांटा गया। यह सूजी और गुड़ से तैयार किया गया हलवा था। क्रांति-स्थल से सभी नाचते-गाते, नारा लगाते जीतपुर मेला स्थल पहुंचे। वहां उन्हें देखने के लिए भीड़ जमा हो चुकी थी। बहुगुणा जी ने सबों का अभिवादन स्वीकार किया और उन्होंने सबों को अपने-अपने स्थान पर बैठने को कहा। सभी वृत्ताकार में बैठ गए। चौधरी जी (स्व. कृष्ण प्रसाद चौधरी) ने बहुगुणा जी के सामने एक गीत गाने की इच्छा प्रकट की। बहुगुणा जी ने सहर्ष अनुमति दे दी। चौधरी जी ने अपने मीठे स्वर में एक सुमधुर गीत - जंगलवा में आयल बहार, बलम संग तोड़ब पियार - सुनाकर बहुगुणा जी को मंत्रमुग्ध कर दिया। वे वाह-वाह कर उठे। चौधरी जी ने धीमे से मेरे कान में कहा - 'हमर जिनगी सार्थक भेय गेलो घनशाम भाय।' ऐसा कहते हुए चौधरी जी का चेहरा चमक उठा था।

गीत के बाद विनय चाचा ने उनके स्वागत में प्रशंसा के पुल बांध सबों को चौंका दिया। बोलते-बोलते उन्होंने जंगल आंदोलन की पूरी कहानी सुना दी। बहुगुणा जी सुन रहे थे और अपनी अधपकी दाढ़ी और मूंछों के बीच मुस्कुरा रहे थे। विनय चाचा की बात खत्म होते ही रघुनाथपुर गांव के दीपनारायण ने जोर से नारा लगाया -

जल, जंगल, जमीन की लूट!
नहीं किसी को इसकी छूट!!

सबों ने समवेत स्वर में इस नारे को दुहराया।

अब बारी थी बहुगुणा जी के संबोधन की। उन्होंने बोलने के पहले 'चिपको आंदोलन' का वही नारा लगवाया, जो क्रांति ध्वज फहराते समय लगाया गया था। उन्होंने गंभीर मुद्रा में कहा – 'हमने आप सबों का नारा सुना और चिपको आंदोलन का नारा आप सबों ने लगाया। नारा गढ़ना और पूरे जज्बे के साथ लगाना अच्छी बात है, लेकिन इससे भी अच्छी बात है नारे का अर्थ समझना और उसके संदेश को जीवन में आत्मसात करना।'

फिर, उन्होंने चिपको आंदोलन की कथा विस्तार से सुनायी और जंगल के उपकार बताये। वहां की महिलाओं की आंदोलन में भूमिका की बात बताकर उपस्थित महिलाओं में आंदोलनों में महिलाओं के योगदान का महत्व भी बतला दिया। सभी उपस्थित श्रोता भावविभोर हो सुन रहे थे। उन्होंने जीतपुर और चेचाली गांव के लोगों की प्रशंसा की और धन्यवाद दिया।

सभा समाप्ति के बाद हमने और अरविंद जी ने उन्हें आसपास जंगल का दर्शन कराया और जीतपुर की जोरिया को भी दिखाया। जोरिया में कलकल-छलछल पानी को बहते देख बहुत खुश हुए और कहा – 'यह पानी तभी तक है, जब तक इसके कैचमेंट के आसपास जंगल है। जंगल कटा तो यह स्रोत भी सूख जायेगा।'

बहुगुणा जी प्रसन्नचित्त हो मधुपुर लौटे। उन्हें बनारस लौटना था, सो उन्हें स्टेशन छोड़ने के लिए मनोज तिवारी और उनके पिताजी श्री प्रद्युत तिवारी (स्वर्गीय) साथ-साथ स्टेशन तक आये। चूंकि उस समय मनोज किशोरावस्था में था, इसलिए वह बढ़-चढ़कर बहुगुणा जी की सेवा में लगा रहा। विदा लेते हुए बहुगुणा जी ने मनोज को आशीर्वाद देते हुए कहा – 'यशस्वी भव!'

इसके बाद उन्होंने हम सबों के आगे के बहुत सारे कार्यक्रमों में सहभागिता निभाई। मार्गदर्शन किया। हम साथ-साथ विदेशों में भी रहे। दुनिया के मंचों पर सुनने और सीखने का मौका मिला।

जब उन्हें कोविड हुआ, तब से मेरा मन आशंकित था, क्योंकि उम्र उनकी 94 वर्ष थी। इसलिए मन का एक कोना कह रहा था कि वे अब इस दुनिया को विदा कहने वाले हैं। लेकिन दूसरा कोना कह रहा था 'काश, वो बच जाएं! आगे भी हम सबों को बहुत कुछ सीखने को मिले। लेकिन जैसे ही उनके देहावसान की सूचना मिली, मन बैठ गया। देश ने कुदरत को बचाने के लिए अनवरत उद्यत योद्धा को खो दिया। उन्हें नमन - हूल जोहार!

- घनश्याम

मेधा पाटकर

प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्त्ता एवं नर्मदा बचाओ आंदोलन की प्रवर्त्तक मेधा पाटकर का जन्म 1 दिसंबर 1954 को मुंबई में हुआ। इनके पिता श्री वसंत खानोलकर एक स्वतंत्रता संग्रामी थे और माता इंदु खानोलकर एक समाज सेविका थीं। टाटा इंस्टीच्यूट ऑफ सोशल साइंसेस (TISS) से सामाजिक कार्य में एम.ए. की डिग्री प्राप्त करने के बाद वर्ष 1985 में मुंबई में झुग्गियों में बसे लोगों की सेवा करने वाली संस्था से जुड़ गईं। गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित मेधा पाटकर ने सरदार सरोवर परियोजना से प्रभावित होने वाले लगभग 37 हजार गांवों के लोगों को अधिकार दिलाने की लड़ाई लड़ी है। पूरी दुनिया में उन्हें नर्मदा घाटी की आवाज के रुप में जाना जाता है। 1996 में मेधा पाटकर ने अन्य कार्यकर्त्ताओं के साथ मिलकर नेशनल एलायंस ऑफ पिपुल्स मुवमेंट (NAPM) की स्थापना की। बांधों के निर्माण से प्रभावित होने वाले पर्यावरणीय सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों पर शोध करने वाली विश्वस्तरीय संस्था की सदस्य और प्रतिनिधि रहने के साथ ही वे कई सामाजिक और पर्यावरण संबंधी आंदोलनों में भागीदारी कर चुकी हैं। 2014 के लोकसभा चुनाव में उत्तर-पूर्व मुंबई से आम आदमी पार्टी के उम्मीदवार के रुप में चुनाव भी लड़ी हैं।

समाज के लिए कुछ कार्य कर पाने को, समाज के हित के लिए आवाज उठाने को ही मेधा पाटकर अपनी सबसे बड़ी उपलब्धि मानती हैं। उनकी अथक सेवाओं के लिए वर्ष 1991 में 'राइट लाइवलीहुड अवार्ड', 1992 में 'गोल्डमैन पर्यावरण' पुरस्कार के साथ-साथ कई पुरस्कारों से उन्हें सम्मानित किया गया है।